

RS
179
J6

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन आयुर्वेद ग्रन्थमाला

४७

रसकौमुदी

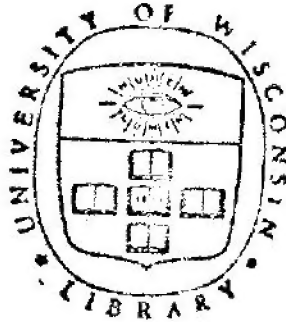
‘विद्योतिनी’ हिन्दीव्याख्योपेता



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

I-500-673

Sarma



॥ श्रीः ॥

विद्याभवन आधुनिक ग्रन्थमाला

४७

Dr. Sarmā

मिषग्वर श्रीमानचन्द्रशर्मविरचिता

रसकौमुदी

‘विद्योतिनी’ हिन्दीव्याख्योपेता

व्याख्याकारः

श्रीपावनीप्रसाद शर्मा

सम्पादकः

मिषग्वर श्रीब्रह्मशङ्करमिश्रः



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

१९६६

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०२३

मूल्य : १-५०

© The Chowkhamba Vidya Bhawan,
Chowk, Varanasi-1
(INDIA)
1966

Phone : 3076

प्रधान कार्यालय:—

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

गोपाल मन्दिर लेन,

पो० आ० चौखम्बा, पोस्ट बाक्स नं० ८, वाराणसी-१

THE
VIDYABHAWAN AYURVEDA GRANTHAMALA

47

THE
RASAKAUMUDĪ

OF

BHĪṢAGVARA JÑĀNACHANDRA ŚARMĀ

With

The 'Vidyotinī' Hīndī Commentary

By

SRĪ PĀVANĪ PRASĀD SHARMĀ

Edited by

Shri Brahmarshankar Mishra

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

VARANASI-1

1966

First Edition

1966

Price : 1-50

Also can be had of

THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

Publishers & Antiquarian Book-Sellers

P. O. Chowkhamba, Post Box 8, Varanasi-1 (India)

Phone 3145

प्राक्कथने

रस-चिकित्सकों को सुविदित है कि रस-चिकित्सा-संबन्धी ग्रन्थ-रत्न थोड़े ही उपलब्ध हैं। उपलब्ध ग्रन्थों में भिषग्वर ज्ञानचन्द्र शर्मा विरचित 'रस-कौमुदी' भी अपनी उपयोगितावश महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है जिसके संस्कृत-टिप्पणी आदि से संवलित एक-दो संस्करण ही दृष्टिपथ में आए हैं।

इस प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थ में संक्षिप्त रूप से पारद-सम्बन्धी सभी चिकित्सोपयोगी योगों पर उत्तम प्रकाश डाला गया है।

यद्यपि अधिकारी विद्वानों द्वारा इसके परिशोधनादि संस्कार उत्तम रीति से हो चुके हैं तथापि इदानींतया हिन्दी अनुवाद हो जाने पर ही यह बहुजन हिताय सिद्ध हो सकेगा, इस दृष्टि से इस कोटि के प्रकाशनों के एकमात्र व्रती प्रकाशक महोदय ने श्री पावनीप्रसाद शर्मा से 'विद्योतिनी' हिन्दी व्याख्या निर्मित कराई और इसके सम्पादन-संशोधनादि का भार मुझ पर छोड़ दिया।

मेरे इस दुःसाहस के परिणाम का निर्णय तो पाठक करेंगे ही, मैंने तो विद्वानों का अनुगमन करते हुए विशेष ध्यान इस बात का रखा है कि मूल से संग-विच्युति कहीं न होने पावे।

मेरे कार्य से पाठकों का तनिक भी हित हुआ तो गुरुजनों का आशीर्वाद समझूंगा।

संबद्ध त्रुटियों के लिये क्षमाप्रार्थी हूँ।

वसंतवदः

ब्रह्मशंकरमिश्रः

विषय-सूची

पृ०		पृ०
१	रसस्य कुर्वुरभस्म	२१
६	रसभस्मानां गुणाः	२५
७	सिद्धपूजाविधिः	"
९	इष्टार्थसिद्धिगुटिकाप्रकारः	२७
"	रसस्य दीपनप्रकारः	२९
१०	रसस्य ग्रासप्रदानप्रकारः	३०
११	रसमुखबन्धनप्रकारः	३१
"	पारदमुखबन्धनमन्त्राः	३२
१२	वेधामुखरसः	३३
१३	धूमवेधी रसः	३४
"	जगन्मोहनरसाः	३५
१४	षण्मुखरसः	४०
"	सार्धभौमरसः	४१
१६	नवग्रहरसः	४२
"	लोकोत्तररसः	४४
१७	ग्रहणीवेद्यारसः	४५
१८	विश्वम्भररसः	४८
१९	पञ्चबाणरसः	४९
२०	ब्रह्माखरसः	५२
२१	महाकालानलरसः	५८
२२	आग्नेयरसः	५४
२४	संशोषगरसः	५६
"	रसमात्रा गुटिका	५७
"	त्रैलोक्यचिन्तामणिरसः	६०

रस-कौमुदी

‘विद्योतिनी’ हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽधिकारः

श्रीचन्द्रशेखरमुनीश्वरवंशजातः

सर्वज्ञचन्द्र इति विप्रकुलोत्तमोऽस्ति ।

श्रीमन्त्रशब्दशिवलब्धवरप्रसादा

च्छ्रीमद्यतीन्द्रविबुधेन्द्रवरात् स तस्मात् ॥१॥

लोके सर्वभिषङ्मनोहरभिषक् शास्त्रान्धकारापहा-

गुर्वीर्गवर्मदान्धसर्वगदचोरस्तोमरात्कान्तरा ।

सर्पद्विरवकरूपदृग्विषजराजारभ्रमघ्नः क्रमाद्

दारिद्र्याम्बुधितारणी रसकौमुदी ह्यक्षयं दीप्यते ॥

श्री चन्द्रशेखर मुनि के वंश में उत्पन्न हुआ सर्वज्ञचन्द्र नामका है जिसमें उत्पन्न उत्तम कुल विप्रके ज्ञानचन्द्र ने छद्मी और शिवजी के मंत्र क जप की कृपा से पंडितों में तथा यतियों में श्रेष्ठों के वरदान से

१. श्लोकस्यास्य रचना सर्वथास्वसम्बद्धा दोषबहुला चेति विज्ञायते
अतः पाठद्वयस्य टीकां कर्तुमसमर्थोऽस्मि ।

इस ग्रन्थ को रचा है। संसार में जो श्रेष्ठ वैद्य हैं वे शास्त्र के विषय में फैले हुए अन्धकार को नष्ट करने वाले हैं और यह रसकौमुदी नामक ग्रन्थ मनुष्य की दरिद्रता के समुद्र से तारने वाली है तथा बिना ज्ञेय के प्रकाश को प्राप्त होती है ॥ १-२ ॥

सर्वाणि रसशास्त्राणि विमृश्य रसकौमुदी ।
ज्ञानचन्द्रेण रचिता संक्षेपेण महात्मना ॥ ३ ॥
कवेर्नाम ज्ञानचन्द्रस्तच्छास्त्रं रसकौमुदी ।
अन्यै रसभिषक्शास्त्र कारैः किं प्रयोजनम् ॥ ४ ॥
रसकौमुदीशास्त्रं लोकहितार्थं विरच्य वक्ष्यामः ।
तदेहलोहसिद्धयै शरीरिणां सकलसिद्धशास्त्रोक्तम् ॥ ५ ॥

सम्पूर्ण रसग्रन्थों का मनन तथा मथन करके ज्ञानचन्द्र नामक विद्वान् ने संक्षेप में रसकौमुदी का निर्माण किया है। ग्रन्थकर्ता का नाम ज्ञानचन्द्र है तथा उसके शास्त्र का नाम रसकौमुदी है। जब इसमें रसशास्त्र का सार भाग आ गया है तब अन्य ग्रन्थों से क्या लाभ ? रसकौमुदी नामक ग्रन्थ को लोक के हित के लिये कहते हैं इसमें मनुष्यों की देह तथा लोह की सिद्धि का जो विवेचन है वह सब शास्त्रीय है ॥ ४-५ ॥

आदौ तावद्रसोत्पत्तिं सिद्धिञ्च लयकारणम् ।
तत्स्वरूपं च तद्भेदान् क्रमाद्वक्ष्यामि शृण्वताम् ॥ ६ ॥
तस्मिन्काले पुरा कामः स्वसामर्थ्यात्समुद्यतः ।
ब्रह्मविष्णुशिवात्मेषु प्रयोगं कुरुते क्रमात् ॥ ७ ॥
ईश्वरः सर्वलोकेशस्तेषां कामाधिकाधिकः ।
मोहितानां प्रभावेण स्वदेव्यां रमते भृशम् ॥ ८ ॥

निरन्तरं महागाढरत्या वीर्योद्भवोऽभवत् ।
जगदापूरितं तेन महाप्रलयकालवत् ॥ ९ ॥
सूर्येन्दुतारकादीनामुदयास्तं विना जगत् ।
अधिभूतं जगत्सर्वं मातरं शिशुवद्विना ॥ १० ॥
तस्माल्लम्बोदराद्याश्च कुमाराः शक्तयस्तथा ।
रुद्रभूवः सदा भूमिः भारसम्पीडिताभवत् ॥ ११ ॥
अधोषयस्तथा ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रदेवताः ।
महाश्चर्यं गताः सर्वे मुनयोऽमितचेतसः ॥ १२ ॥
विरिञ्चिं प्रति गच्छन्ति तत्र चाक्रोशयन्ति ते ।
साचारसर्वधर्माश्च परित्यज्याद्भुतं गतः ॥ १३ ॥
सोऽपि कामान्धकाराब्धिमग्नोजः सनिरोदरः ।
एतत्कामान्धकार्यं न जानातीति वचोऽब्रवीत् ॥ १४ ॥
श्रुत्वा तदीरितं वाक्यमेतत्ते मुनिपुङ्गवाः ।
तच्छनैर्वासवं वाणि न्यवसत्परितो विधिः ॥ १५ ॥
ततो विष्णुं समागत्य ततः सर्वे मुनीश्वराः ।
सक्रोधास्तत्र तिष्ठन्ति यत्र चापरसं विना ॥ १६ ॥
यन्निमित्तमिदं कार्यं जगत्क्षोभमुदीरितम् ।
ज्ञानाद् दृष्ट्वा तु तं ज्ञात्वा तं रुद्रं त्वरितास्तथा ॥ १७ ॥
स्वशरीरार्धनारीति अशरीरी भवत्विति ।
स्वशरीरार्धहारित्वात् पार्वत्याः पार्वतीप्रियः ॥ १८ ॥
तथैव बुद्धौ ज्ञानेन निर्गत्याथ सविस्मयः ।
जगदापूरितं वीर्यं पाताले तत्र तत्र च ॥ १९ ॥

स्थापयत्यदितिः सर्वे मुनयः सर्वदेवताः ।

ब्रह्मानन्दगताः सर्वे ह्यभवत् पूर्ववज्जगत् ॥२०॥

प्रारम्भ में रस की उत्पत्ति उसकी सिद्धि तथा लय का कारण उसका स्वरूप तथा भेद बतलावेंगे उन्हें सुनो । प्राचीन काल में काम अपने सामर्थ्य से स्वयं उत्पन्न हुआ और उसने ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव में ही अपना प्रयोग कर डाला । शिव जो कि सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं उनमें काम सबसे अधिक उत्पन्न हुआ और काम की अधिकता के कारण उन्होंने पार्वती से खूब रमण किया । निरन्तर मैथुन करने से शिवजी का जो वीर्य उत्पन्न हुआ उससे सारा संसार महाप्रलय के समान व्याप्त हो गया, सूर्य, चन्द्रमा, तारा-गण अस्त हो गये और सारे संसार में अँधेरा हो गया । सारा संसार ऐसा हो गया जैसे कि बिना माता के बालक हो जाता है । पश्चात् लम्बोदर आदि कुमार तथा शक्ति उत्पन्न हुई, पृथ्वी अत्यन्त भार से पीड़ित हो गई । ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर आदि बड़े आश्चर्य में पड़ गये, मुनियों के आश्चर्य का भी ठिकाना न रहा पश्चात् सब लोग ब्रह्मा के पास गये और वहाँ जाकर यह किस्सा चिल्लाने लगे सबों ने आचार और धर्मों को छोड़ दिया सब आश्चर्य में पड़ गये स्वयं ब्रह्मा कामान्ध हो गये उन्होंने कहा कि इस कामान्धता के कारण को वे नहीं जानते । इस प्रकार उनके ये वाक्य सुनकर मुनि-गण इन्द्र के पास गये और उनसे यह सब वर्णन किया पश्चात् विष्णु के पास गये सब मुनीश्वरों ने विष्णु के पास आकर क्रोध सहित बैठ गये । तब विष्णु ने जिसके निमित्त यह जगत् को क्षोभ करने वाला कार्य किया गया है उसे ज्ञान से जानकर अर्थात् उसे शिवजी का समझ कर कहा कि शिव का अर्ध शरीर अशरीर हो जावे । अपने शरीर के हार जाने से पार्वतीप्रिय शिवजी महाराज ने ज्ञान से

१. प्रकरणेऽस्मिन् बह्वयः अशुद्धयः सन्ति ।

बुद्धि में निकल कर आश्चर्य के साथ वीर्य से सकल संसार को व्याप्त कर दिया फिर अदिति ने सब वीर्य को स्थापित कर दिया तब सब मुनीन्द्र तथा देवता गण आनन्द में मग्न हो गये और संसार पहिले जैसे हो गया ॥ ६-२० ॥

वक्तव्य—यह पारद की उत्पत्ति का कथानक अन्य ग्रन्थों से बिल्कुल भिन्न है रसरत्नसमुच्चय आदि ग्रन्थों में पारद की उत्पत्ति का सम्बन्ध शिव जी तक रक्खा गया है । इसके साथ ही श्लोकों में जगह-जगह अशुद्धियाँ तथा छन्दोभङ्ग भी हैं ।

इति प्रथमोऽधिकारः ।

अथ द्वितीयोऽधिकारः

त्रिमूर्त्यात्मकरूपोऽयं^१ सर्वदोषविवर्जितः ।
 रसः सोऽमृततुल्याख्यः सर्वरोगहरोऽभवत् ॥ १ ॥
 दोषाविहीनकः सूतः सर्वरोगकरोऽभवत् ।
 सोऽपि वैद्यैर्विदग्धोऽपि दोषहान्यास्यदोऽभवत् ॥ २ ॥

सब दोषों से रहित त्रिमूर्त (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) इनके स्वरूप वाला यह पारद अमृत के समान गुणों से युक्त है तथा सब रोगों को हरने वाला है। दोषयुक्त पारद सब रोगों को पैदा करने वाला है। वह पारद दग्ध (भस्म) करने पर अनेकों दोषों तथा हानियों को पैदा करने वाला है ॥ १-२ ॥

सूतस्य नवदोषाः—

उड्डीनत्वं च कौटिल्यमनावर्तश्च सङ्करम् ।
 षण्डत्वं वह्निकारित्वं समलत्वं गुरुत्वकम् ॥ ३ ॥
 सविषञ्चेति सूतस्य नव^२ दोषाः प्रकीर्तिताः ।

उड्डीन एवं कौटिल्य, अनावर्त, सङ्कर, षण्डत्व, अप्रिकारित्व, मलयुक्तत्व, गुरुता, विषदोष, ये पारद के नौ दोष हैं ॥ ३ ॥

नवदोषाणां तत्तद्रोगकारिता-प्रदर्शनम्—

उड्डीनदोषे शूलः स्यात् कौटिल्ये स्यात्कपालरूक् ॥ ४ ॥

१. त्रिमूर्त्यात्मकरूपः = ब्रह्मविष्णुरुद्रस्वरूपः ।

२. ग्रन्थान्तरे तु—

नागो बज्रो मल्लो वह्निश्चांचल्यं च विषं गिरिः ।

असह्यग्निर्महादोषा निसर्गात्पारदे स्थिताः ॥

अन्यच्च—पर्यंटी पाटकी भेदी द्रावी मलकरी तथा ।

अन्धकारी तथा ध्वांक्षी विज्ञेयाः सप्त कंबुकाः ॥

द्वितीयोऽधिकारः

७

अनावर्ते अमोद्वेगः सङ्करे दोषसञ्चयः ।
 षण्डत्वे स्यादसन्तानो वह्निदाहादिकुष्ठकृत् ॥ ५ ॥
 मलत्वे वान्तिमूर्च्छादि—महोदरगतान्गदान् ।
 गुरुत्वे जाड्यमूर्च्छे च विषे गात्रक्षयो भवेत् ॥ ६ ॥
 यथा^१ लोहे तथा देहे गुणावगुणसङ्करः ।
 ततः सूतस्य शुद्ध्यर्थं नवकर्म समीर्यते ॥ ७ ॥

पारद के अन्तर्गत जो उड्डीन दोष है वह शूल को उत्पन्न करता है। कौटिल्य दोष कपाल में पीड़ा उत्पन्न करता है। अनावर्त दोष से भ्रम तथा उद्वेग उत्पन्न होता है, सङ्कर दोष से देह में दोषों का संचय होता है। षण्ड दोष से सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति नष्ट होती है, वह्नि दोष से दाह तथा कुष्ठ आदि विकार होते हैं। मल दोष से उलटी, मूर्च्छा तथा पेट के रोग पैदा होते हैं, गुरुता से जड़ता तथा मूर्च्छा उत्पन्न होती है। विष दोष से शरीर क्षीण होता है। जिस प्रकार यह पारद शरीर में गुण तथा अवगुणों को उत्पन्न करता है उसी प्रकार यह धातुओं में भी उत्पन्न करता है इसलिये इस पारद की शुद्धि के लिये नौ कर्मों (संस्कारों) को करना चाहिये।

रससंशोधनार्थं नव कर्माणि^२—

मर्दनोत्थापने तस्य पातनञ्चैव दीपनम् ।
 जारणं सारणं ग्रास-प्रदानं रञ्जनं तथा ॥ ८ ॥

१. 'यथा लोहे तथा देहे इत्यत्र' 'यथा देहे तथा लोहे' एतादृशः पाठः साधीयानिति ।

२. ग्रन्थान्तरे तु पारदस्याष्टादश संस्काराः, तद्यथा—

स्यात्स्वेदनं तदनु मर्दनमूर्च्छनं च

उत्थापनं पतन-रोध(बोध)-निधामनानि ।

संदीपनं गगनभक्षणमात्रमत्र

क्रामणश्चैव सर्वेषां देहिनामुपयोगिकाः ।
मर्दनादेति नैर्मन्यमुत्थापनाल्लघुर्भवेत् ॥ ६ ॥

पातनादेव चाञ्चन्यं हरेत्सृष्टिरसायनम् ।
दीपनान्मुखतेजस्वी जारणान्निर्मलो भवेत् ॥ १० ॥

सारणादक्षयो भूत्वा लोहग्रासमुखो भवेत् ।
रञ्जनात्सर्वरोगघ्नः क्रामणाद्वेधको भवेत् ॥ ११ ॥

ईदृग्विधरसो देहलोहसिद्धिकरः परम् ।

मर्दन, उत्थापन, पातन, दीपन, जारण, सारण, ग्रास, रञ्जन, क्रामण ये पारद की शुद्धि के लिये नौ संस्कार कहे हैं। इन नौ संस्कारों के करने से पारद प्राणियों के सेवन के योग्य हो जाता है। मर्दन संस्कार के करने से पारद में निर्मलता आती है, उत्थापन संस्कार के करने से पारद लघु (हलका) होता है। पातन संस्कार के करने से पारद की चंचलता दूर होती है। दीपन संस्कार के करने से पारद मुख वाला तथा तेजवान् होता है। जारण संस्कार के करने से पारद निर्मल होता है। सारण संस्कार के करने से पारद अक्षय (क्षीण न होने वाला) होता है। धातुओं का ग्रास देने से पारद मुख वाला हो जाता है। रञ्जन करने से सब रोगों को नष्ट करने वाला हो जाता है तथा क्रामण संस्कार के करने से पारद सब धातुओं का वेध करने वाला हो जाता है। इन संस्कारों से शुद्ध किया हुआ पारद शरीर तथा लोह की सिद्धि करने के लिये श्रेष्ठ है ॥ ८-११ ॥

संचारणा गर्भगतिर्दुस्तिश्च ॥

बाह्यद्रुतिः सूतकजारणा स्याद् ग्रासस्तथा सारणकर्म पश्चात् ।

संक्रामणं वेधविधिः शरीरयोगस्तथाष्टादशधात्र कर्म ॥

अथ रससंस्काराः, तत्रादौ मर्दनम्—

त्रिद्वारं पञ्चलवर्णं नवसारं च चित्रकम् ॥ १२ ॥

त्रिकटुत्रिफलोन्मत्तरजनीगुडसर्षपम् ।

एतत्सर्वं रसेन्द्रस्य त्रिंशांशं निक्षिपेत्समम् ॥ १३ ॥

शृङ्गवेरस्सेनापि कुमारीस्वरसेन च ।

त्रिदिनं मर्दयेत्सूतमातपे निक्षिपेद् दृढम् ॥ १४ ॥

नवदोषविनिर्मुक्तो जायते निर्मलो रसः ।

जवाखार, सबजीखार, सुहागा, पांचो नमक, नौसादर, चित्रक, सोठ, मिरच, पीपल, हरड़, बड़ेडा, आमला, धतूरा, हलदी, गुड़, सरसों इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करें। इस चूर्ण को पारद का तीसवाँ भाग लेकर पारद के साथ अदरक और घृतकुमारी के रस में खरल को धूप में रखकर तीन दिन तक दृढता से मर्दन करे ऐसा करने से पारद नौ दोषों से रहित होकर निर्मल (शुद्ध) हो जाता है ॥ १२-१४ ॥

इति मर्दनविधिः ।

नवदोषापनुत्तये शुद्धिभेदप्रदर्शनम्—

कुमारीत्रिफलाचित्रैर्मलं वह्निं विषं क्रमात् ॥ १५ ॥

चारद्वयेन कौटिल्यं लवणैरनिवर्तकम् ।

सङ्करं नवसारेण उन्मत्तेन तथोद्दिनम् ॥ १६ ॥

गुरुत्वं त्रिकुटेनैव रजनीगुडसर्षपैः ।

पण्डितं च, क्रमादेवं नवदोषान्विनाशयेत् ॥ १७ ॥

पारद के नौ दोषों को दूर करने के लिए दूसरा शुद्धि का उपाय लिखते हैं घृतकुमारी के रस से मर्दन करने से मलदोष, त्रिफला के

१. ग्रन्थान्तरे तु त्रिंशांशमित्यत्र 'षोडशांश' मित्यभिहितम् ।

क्रामणञ्चैव सर्वेषां देहिनामुपयोगिकाः ।
मर्दनादेति नैर्मन्यमुत्थापनाल्लघुर्भवेत् ॥ ६ ॥

पातनादेव चाञ्जनं हरेत्सुष्टिरसायनम् ।
दीपनान्मुखतेजस्वी जारणाभिर्मलो भवेत् ॥ १० ॥

सारणादक्षयो भूत्वा लोहग्रासमुखो भवेत् ।
रञ्जनात्सर्वरोगघ्नः क्रामणाद्वैधको भवेत् ॥ ११ ॥

ईदृग्विधरसो देहलोहसिद्धिकरः परम् ।

मर्दन, उत्थापन, पातन, दीपन, जारण, सारण, ग्रास, रञ्जन, क्रामण ये पारद की शुद्धि के लिये नौ संस्कार कहे हैं। इन नौ संस्कारों के करने से पारद प्राणियों के सेवन के योग्य हो जाता है। मर्दन संस्कार के करने से पारद में निर्मलता आती है, उत्थापन संस्कार के करने से पारद लघु (हलका) होता है। पातन संस्कार के करने से पारद की चंचलता दूर होती है। दीपन संस्कार के करने से पारद मुख वाला तथा तेजवान् होता है। जारण संस्कार के करने से पारद निर्मल होता है। सारण संस्कार के करने से पारद अक्षय (क्षीण न होने वाला) होता है। धातुओं का ग्रास देने से पारद मुख वाला हो जाता है। रञ्जन करने से सब रोगों को नष्ट करने वाला हो जाता है तथा क्रामण संस्कार के करने से पारद सब धातुओं का वेध करने वाला हो जाता है। इन संस्कारों से शुद्ध किया हुआ पारद शरीर तथा लोह की सिद्धि करने के लिये श्रेष्ठ है ॥ ८-११ ॥

संचाल्या गर्भगतिर्दुर्दिष्टः ॥

बाह्यदुतिः सूतकत्वारणा स्याद् ग्रासस्तथा सारणकर्म परचात् ।

संक्रामणं वैधविधिः शरीरयोगस्तथाप्याहसधात्र कर्म ॥

अथ रससंस्काराः, तत्रादौ मर्दनम्—

त्रिचारं पञ्चलक्षणं नवसारं च चित्रकम् ॥ १२ ॥

त्रिकुट्ट्रिफलोन्मचरजनीगुडसर्पपम् ।

एतत्सर्वं सेन्द्रस्य त्रिंशंशं निधिपेत्समम् ॥ १३ ॥

मृद्वैरसेनापि कुमारीस्वरसेन च ।

त्रिदिनं मर्दयेत्सूतमातपे निधिपेद् दृढम् ॥ १४ ॥

नवदोषविनिर्मुक्तो जायते निर्मलो रसः ।

जवाखार, सज्जीखार, सुहागा, पांचो नमक, नौसादर, चित्रक, सोठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, घुतूरा, हलदी, गुड़, सरसों इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करें। इस चूर्ण को पारद का तीसवाँ भाग लेकर पारद के साथ अदरक और घृतकुमारी के रस में खरल को धूप में रखकर तीन दिन तक दृढता से मर्दन करे ऐसा करने से पारद नौ दोषों से रहित होकर निर्मल (शुद्ध) हो जाता है ॥ १२-१४ ॥

इति मर्दनविधिः ।

नवरोधापनुत्तवे शुद्धिभेदप्रदर्शनम्—

कुमारीत्रिफलाचित्रैर्मलं वह्निं विषं क्रमात् ॥ १५ ॥

वारद्वयेन कौटिल्यं लवणैरनिवर्तकम् ।

सङ्करं नवसारेण उन्मत्तेन तथोद्धिनम् ॥ १६ ॥

गुरुत्वं त्रिकुट्टेनैव रजनीगुडसर्पपम् ।

पण्डित्वं च, क्रमादेवं नवदोषान्विनाशयेत् ॥ १७ ॥

पारद के नौ दोषों को दूर करने के लिए दूसरा शुद्धि का उपाय लिखते हैं घृतकुमारी के रस से मर्दन करने से मलदोष, त्रिफला के

१. ग्रन्थान्तरे तु त्रिंशंशमित्यत्र 'योद्धायां' मित्यभिहितम् ।

रस से मर्दन करने से अग्निदोष, चित्रक के रस से मर्दन करने से विष दोष दूर होता है। सबजीखार और जवाखार के साथ मर्दन करने से कौटिल्य दोष, लवण के साथ मर्दन करने से अनावर्त दोष, नौसावर के साथ मर्दन करने से सङ्कर दोष, घतुरे के रस से मर्दन करने से पङ्कनी दोष, त्रिकुटा के साथ मर्दन करने से गुरुत्व दूर होता है। हलदी, गुड़ और सरसों के साथ मर्दन करने से घण्डत्व दूर होता है। इस क्रम से मर्दन करने से नौ दोष दूर होते हैं ॥ १५-१७ ॥

अथ उत्थापनम्—

भाण्डद्वयकृते यन्त्रे लोहविद्याधराह्वये ।

सूतं चतुष्पलं तस्य द्विगुणं लवणं क्षिपेत् ॥ १८ ॥

निम्बपूरं प्रस्थमात्रं निक्षिपेद्बद्धि-मृत्स्तनया ।

तत्सन्धिवन्धनं कृत्वा त्रिदिनं पाचयेच्छनैः ॥ १९ ॥

तेनैवोर्ध्वगतः सूतः पुनरुज्जीवनायते ।

दो भाण्ड लेकर उनसे विद्याधर यन्त्र बनावें नीचे के भाण्ड में आठ पल लवण के मध्य में चार पल पारद रखें, फिर ऊपर से नीचू का रस चौंसठ तोला डालकर चढ़े के मुँह के ऊपर दूसरा ललटे मुँह करके षड़ा रख दें फिर मिट्टी से चढ़ों की सन्धि बन्द कर दें पश्चात् उसे चूल्हे पर स्थापित कर मन्दान्नि से धीरे-धीरे पकावें। इस क्रिया से पारद का उत्थापन संस्कार होता है इस क्रिया से पारद जीवित होकर ऊपर की तरफ चढ़कर लग जाता है ॥ १८-१९ ॥

इत्युत्थापनविधिः ।

१. रसरत्नसमुच्चये विद्याधरयन्त्रं यथा—

यन्त्रं विद्याधरं जेयं स्थाकीकृतियसम्पुटाल् ।

सुवर्णं चतुर्मुखं कृत्वा यन्त्रभाण्डं निवेशयेत् ।

तत्रौषधं विनिक्षिप्य निरुप्याज्जाण्डकाननम् ।

तेनैवोर्ध्वगतः सूतः पुनरुज्जीवनायते ।

अथ 'अथःपातनविधिः

पाठाकरज्जसरसैः संमर्द्य च रसं पुनः ॥ २० ॥

कृष्णोन्मचरसं पूर्य दिनमेकं तु पाचयेत् ।

अथः पतति तत्सूतो जायते हेमरूपवत् ॥ २१ ॥

प्रथम पारद को पाठा और करछ इनके स्वरस में मर्दन कर ऊपर के भाण्ड में लेप कर दें फिर नीचे के भाण्ड को काले घतुरे के रस से पूर्ण करें। पश्चात् ऊपर के भाण्ड को नीचे के भाण्ड के ऊपर ललटा रखकर दोनों की संधि जोड़ दें पश्चात् इस संपुट को एक गढ़े में स्थापित कर दें। फिर ऊपर के षड़े के ऊपर बकरी की मँगनी तुष आदि की अग्नि जलावें इस प्रकार बारह घण्टे पकावे इस क्रिया से पारद नीचे के भाण्ड में गिरेगा और उसका स्वरूप सुवर्ण के समान हो जावेगा ॥ २०-२१ ॥

इत्यथःपातनविधिः ।

अथ 'दीपनम्—

द्वाराम्ललवणसौद्रं ब्रह्मदण्डीयशिशुर्कैः ।

१. श्रव्यान्तरे तु—

त्रिफलाशिशुमिक्षिमिलंबनानुसिंसुते ।

नर्द्य पित्र्यं रसं कृत्वा लेपयेद्पूर्वमावहके ॥

उर्ध्वमाण्डोदरं लिप्त्वा बाधोभाष्ये जलं क्षिपेत् ।

संक्षिपेत् द्वयोः कृत्वा तच्छत्रं सुवि पूरयेत् ॥

उपरिष्ठापुटे द्वा जले पतति पारदः ।

अथःपातनमित्युक्तं सिद्धार्थः सूतकर्मणि ॥

२. श्रव्ये तु—

कासीसं पञ्चलवणं राजिका भरिवाणि च ।

शुशुम्बीजमेकत्र टंकणेन समन्वितम् ॥

आकीर्ण्य कांक्षितं शोलायन्ने पाच्यज्जिभिर्दिनैः ।

दीपनं जायते सम्यक् सूतराजस्य चोत्तमम् ॥

चाण्डालीराजिकाभूर्जटङ्कशैश्व समायुतम् ॥ २२ ॥

रसं संमर्धं वस्त्रेण वद्व्या पोटात्मिकां ततः ।

याचनालारनालेन निष्त्वा पोटात्मिकां निषेत् ॥ २३ ॥

तीनों क्षार, अम्ल, द्रव्य, पाँचों लवण, राहद, ब्रह्मदण्डी, सहजना, चाण्डाली (विन्योपधि विशेष), राई, भोजपत्र, सुहागा इनको चूर्ण लेकर इस चूर्ण में पारद का मर्दन करें पश्चात् उस पारद को पोटाली में बाँध कर जो की कांजी में बोलायन्त्र द्वारा एक दिन पकावें । इस क्रिया से पारद का दीपन होता है ॥ २२-२३ ॥

अथ जारणम्—

निर्गुण्डोद्धृतीवासारसपरितभाण्डके ।

रसं निष्त्वा दशदिनं भूतले स्थाप्य चोद्धरेत् ॥ २४ ॥

किञ्चित्क्षणं निरीक्षेत सदा चलति सूतकः ।

संभाल, बड़ी कटेरी, अहसा इनके स्वरस से पूर्ण भाण्ड में पारद को स्थापित कर भाण्ड का मुख बन्द कर देवें पश्चात् उसे भाण्ड को दस दिन जमीन में रखें पश्चात् उसे निकाल लें ॥ २४ ॥

इति जारणम् ।

१. “याचनालारनालेन निष्त्वा पोटात्मिकां निषेत्” इत्यत्र “याचनालारनाले तु निष्त्वा पोटात्मिकां निषेत्” इति सुष्ठु पाठः ।

२. विधिरयं नुदित इवेति प्रतीयते ग्रन्थान्तरे जारणविधानम्

यथा—“पदबन्धनारगोमूल-स्तुहीक्षीर-प्रलेपिते ।

वद्विष्य चर्दं यत्नेन भूजे प्रासनिविशितम् ॥

आरारनालसूत्रेषु स्वेदयेन्निदिनं भिषक् ॥”

अथ प्रासप्रदानम्—

[गन्धकाभ्रक-तैलेन दोलायन्त्रे विषाचयेत् ।
कांस्यपात्रे रसं स्थाप्य लोहपात्रे विनिक्षिपेत् ॥]

इति प्रासप्रदानम् ।

अथ रञ्जनविधिः—

दिगुणं गन्धकं चैव दिङ्गुलं च चतुर्गुणम् ॥ २५ ॥

पञ्चभागं मनश्शैलं, षडङ्गं च सुवर्चलम् ।

एतत्समाभ्रकं निष्त्वा हंसपादरीसेन च ॥ २६ ॥

ताम्बूली-स्वरसेनापि वासागोरक्षिकारसैः ।

एतत्सर्वं विमर्धय काचकृप्यां विनिक्षिपेत् ॥ २७ ॥

वज्रमृत्सना-सुसंमिश्रं पट्टराच्छाद्य सर्वशः ।

बालुकायन्त्र-मार्गेण पचेद् द्वादश-यामकम् ॥ २८ ॥

रक्तवर्णा भवेत् सूत उदयादित्यसन्निभः ।

पारद एक भाग, गन्धक दो भाग, दिङ्गुल चार भाग, मैनशिल पाँच भाग, सौचल नमक छः भाग, अभ्रक एक भाग सबको एक साथ हंसराज के रस में मर्दन करें, फिर क्रमशः नागरवेल पान के रस में अहसा तथा गोरक्षकण्ठी के रस में सब को मर्दन करें । पश्चात्

१—विधिरयं नुदित इवेति ज्ञायते अतः कास्त्रादस्य भाषाटीकाकरणं व्यर्थमेव । ग्रन्थान्तरे तु प्रासप्रदानविधिर्यथा—

“क्रमेणानेन दोलायां जार्यं प्रासचतुष्टयम् ।

ततः कण्ठपयन्त्रेण ज्वलने जारयेत्तसम् ॥”

कण्ठपयन्त्रमाह—

“नाम्नीपयसि वारावोरकुहरनिषिद्धलोहसमुदयाः ।

हरयोनिहतरासं चरति पुटैर्गगनगम्भादि ॥”—२० वि०

उस कल्क को काँच की शीशी में स्थापित करें। तत्पश्चात् शीशी को बज्रमिट्टी और कपड़े से सातबार लिप्त करें, पश्चात् उसे बालु-कायन्त्र द्वारा बारह प्रहर पकावें। इस क्रिया से पारद् रक्तवर्ण का प्रातः काल के सूर्य के समान हो जाता है ॥ २५-२८ ॥

इति रत्नजनविधिः ।

अथ कामण्यम्—

मत्स्यसर्पमयूरादिमहिषीविषसंयुतम्^१ ।

मर्दयेदम्लवर्गेण छायाशुष्कं ततो रसम् ॥ २९ ॥

मछली, साँप, मोर तथा भैंस इनके पित्त तथा विष के साथ पारद् को अम्ल वर्ण में मर्दन करें, पश्चात् उसे छाया में सुखा लेंगे इस क्रिया से पारद् का कामण्य^२ संस्कार होता है ॥ ३० ॥

इति कामणविधिः ।

इति तृतीयोऽधिकारः ।

अथ तृतीयोऽधिकारः

अथ सर्वभोगशुद्धिरूप्यते—

सर्वेषां लोहजालानां पाषाणानां विशुद्धये ।

एकैकं सुलभं मार्गं वक्ष्ये गन्धाभ्रकं विना ॥ १ ॥

अम्लचाररविबीरस्तुहीदुग्धसमन्वितैः ।

धत्तूरचित्रत्रिफलास्वरसैर्गोजलान्वितैः ॥ २ ॥

अग्नौ पुनः पुनः पाच्यं सप्तवाराणि चालयेत् ।

सप्त प्रकार की धातुओं तथा पाषाण आदि की शुद्धि के लिये विना गन्धक और अभ्रक के योग के एक ही शुद्धि का सुलभ उपाय है वही बतलाते हैं—अम्लरस, चार, धूहर और आक का दूध, धत्तूर, चित्रक, त्रिफला इनका स्वरस अथवा क्वाथ और गोमूत्र इन द्रव पदार्थों में पूर्वोक्त धातुओं तथा पाषाण आदि की अग्नि पर तप्तकर सातबार बुकावें तथा प्रचालन करें। इस क्रिया से उनकी शुद्धि हो जाती है ॥ १-२ ॥

अथ सर्वपाषाणशुद्धिः—

कुमारीमेघनादानन्दत्रिकटुत्रिफलानि च ॥ ३ ॥

कृष्णायडकदलीशिमुगजातोमार्कजा रसाः ।

पञ्चत्वं^१ जातिपुष्पाणि कज्ज्राद्रुमद्रुमेन्द्रकाः ॥ ४ ॥

एतेषां स्वरसे सम्यक् भावयेदेकविंशतिम्^२ ।

धुतकुमारी, चौलाई, नागरमोथा, त्रिकुटा, त्रिफला, पेंठा, केला, सहैजना, धुंधवी, आक इनके रसों में या जावित्री, करञ्ज, इन्द्रजौ,

१. 'महिषीविषसंयुतम्' इत्यत्र 'महिषीपित्तसंयुतम्' इत्यपि पाठ ।

२. ग्रन्थान्तरे तु—कामणं नाम ताम्रविपरमाण्वनामपि सुवर्णादिचातुर्वर्णादिरूपेण परिणमन्म् तद्यथा—

“शिलया निहृती नागो बह्वं वा तालकेन शुद्धेन ।

कमयाः पीते शुष्के कामण्यमेतत्समुद्दिश्यम्”

१. अष्टाध्यायी भावबुध्नये ।

२. विधिवत् त्रुटित इति प्रतीयते ।

इनमें से किसी के रस में इक्कीस बार भावित करने से सब प्रकार के पापाय शुद्ध हो जाते हैं ॥ ३-४ ॥

इति सर्वपापाशुद्धिः ।

अथ गन्धकशुद्धिरुचये

मृत्नीकुमारीस्वरसमारनालादिपूर्वकम् ॥ ५ ॥

भाण्डवक्त्रे पुटं रुद्ध्वा गन्धवूर्णं विनिक्षिपेत् ।

पुनर्भाण्डं तदाच्छाद्य पुटं दत्त्वा ततः परम् ॥ ६ ॥

स्वाङ्गशीतलकं कृत्वा पुनरुद्धृत्य शुद्धये ।

पश्चात्पुनर्गवां चौरैराज्येन च विशोधयेत् ॥ ७ ॥

काकड़ासिक्की तथा घृतकुमारी का रस, कांजी इनको लेकर एक भाण्ड में भरें पश्चात् उस भाण्ड के मुख पर एक वस्त्र बांधकर उस पर गन्धक का वर्ण डाल देंगे फिर एक छोटी हाथी से उसे ढककर संपुट को बन्द कर देंगे। फिर उसे एक गढ़े में स्थापित कर ऊपर के भाण्ड के चारों तरफ स्रुग् अग्नि थोड़ी देर देंगे। शीतल होने पर उसे खोलें। पश्चात् गन्धक को निकाल कर सुखावें फिर वर्ण कर घृत मिलाकर खोह की कलछी में गलावें फिर उसे द्रवीभूत गन्धक को दूध में डालकर बुकावें। इस क्रिया से गन्धक की शुद्धि हो जाती है ॥ ५-६ ॥

अथान्नकशुद्धिः—

पीतकृष्णाभ्रकं सम्पग् गोक्षीरे भावयेद् दृढम् ।

सर्वदोषविनिर्मुक्तो रसायनकरो भवेत् ॥ ८ ॥

पीले तथा काले अभ्रक को गाय के दूध में भावित करें अथवा

१. 'पीतकृष्णाभ्रकं' इत्यत्र 'तप्तं कृष्णाभ्रकं' इति सुष्ठु पाठः ।

२. 'भावयेत्' इत्यत्र 'सेचयेत्' इति पाठः साधीनाम् ।

स करके बुकावें। इस क्रिया से अभ्रक सब दोषों से रहित होकर रसायन हो जाता है। यह सब रोगों को हरने वाला है ॥ ८ ॥

इत्यन्नकशुद्धिः ।

अथ सर्वपापाशुद्धयस्तत्त्वपातनम्—

उदुम्बरवटारक्तपथ्यग्रीवाक्षतुहीदुग्धाः ।

कुरुटिका क्षीरकर्णी कण्डूकी च सुगन्धिका ॥ ९ ॥

एतेषां सर्ववृक्षाणां क्षीरैर्बहु विभावयेत् ।

एकविंशतिवारान्तु एकैकं भावयेद् दूधैः ॥ १० ॥

क्षीरकन्दं कडुकन्दं रम्भाकन्दं च सूरणम् ।

गुड-गुग्गुलु-गुञ्जाज्य-मधु-रं कणसंयुतम् ॥ ११ ॥

संमर्धाञ्जनतुल्या च विशालार्चान्धमूषके ।

अधरोत्तरकं क्षिप्त्वा पापाय चान्ध्रयेत्ततः ॥ १२ ॥

पटुमृत्तिकसंयुक्तं सप्तधाराणि कारयेत् ।

ध्मातं गाढं खरांगारैः काचवद्धमयं ततः ॥ १३ ॥

स्वाङ्गशीतलकं कृत्वा उद्धृत्य च निरीक्षयेत् ।

सर्वतः स्रक्तरूपाणि दृश्यन्ते मौक्तिका यथा ॥ १४ ॥

सर्वपापाशुद्धयस्तत्त्वानि पतन्तीदग्निधं भवेत् ।

गूलर, बड़, पीपल, न्यमोष (बड़), शूद्र, कुरुटिका (बनस्पति-मोष), क्षीरकर्णी, कण्डूकी (कुकरंदी), सुगन्धिका, इन सब औषधों के दूध से जिसका सत्त्व निकालना हो उसको पृथक्-पृथक् इक्कीस-इक्कीस बार भावित करें। फिर क्षीरकन्द, कडुकन्द, केते का कन्द, जमीकन्द, गुड़, गूलर, धूंधची, धी, शहद, सुहागा इनका एक मिलाकर मर्दन करें इस कलक को इतना मर्दन करें कि वह अंजन के समान हो जावे पश्चात् छान्धमूषा में पापाय के नीचे ऊपर २० को०

इस कलक को रखकर समुद्र को बन्द कर दें। इसके ऊपर साव कपरमिट्टी करें। पश्चात् तीव्र अङ्गारों पर रखकर दृढ़ता से धमाके जब यह विधि हो जावे कि सत्त्व निकल आया तब अग्नि देन बन्द कर दें और समुद्र जब अपने आप क्षीतल हो जावे तब उसे खोलें। इस प्रकार पाक करने पर समुद्र में मोती के समान छोटे छोटे कण सत्त्व के मिलेंगे। इस विधि से सब प्रकार के पाषाणों का सत्त्व निकल आता है ॥ ६-१४ ॥

इति सर्वपाषाणसत्त्वपातनम् ।

अथ पाषाणवज्रमोहाभ्रकटुतिप्रकारः—

पाषाणवज्ररत्नानां सर्वलोहाभ्रकादिनाम् ॥ १५ ॥
द्रुतिरूपं प्रवक्ष्यामि मागमेकं सममकम् ।
पूर्वोक्तोदुम्बरादीनां क्षीरैः सम्भावयेन्मुहुः ॥ १६ ॥
एकविंशति-वारं तत्कृत्वा सूर्यपुटे क्षिपेत् ।
क्षीरकन्दत्रयं चैव सूर्यं पञ्चमित्रकम् ॥ १७ ॥
मांसमेघरूपमेदी च टंक्यं नवसारकम् ।
सूचिकारं च पञ्चैतत्क्षिप्य वा षोडशभागिकम् ॥ १८ ॥
मातुलिङ्गान्तदाडिम-जम्बीरचणकाम्लकैः ।
कृतान्धमूषया^१ स्थाप्य बालुकायन्त्रके पचेत् ॥ १९ ॥
बालाग्निना पचेत् सम्यक् शनैश्च घटिकात्रयम् ।
परचादृशितमुद्भृत्य^२ द्रुतिस्तिष्ठति सूतवत् ॥ २० ॥

१—“आयं गुञ्जाय सौमान्यं औघ्र्यं पुरसंजकम् ।

पुल्लु मिश्रितं पिष्टमिष्टपक्वमुच्यते ।

२—“अन्यसूचायाम्” पाठोऽयं प्रतिभाति ।

३—पाठोऽयमशुद्धः प्रतिभाति ।

अनेनैव प्रकारेण कृते गगनादिकान् ।

पाषाण, वज्र, रत्न सब प्रकार की वातुयें अश्रक आदि द्रव्यों को द्रव रूप में बनाने का एक मर्मयुक्त उपाय बतलाते हैं—पहिले को सत्त्वपातन के लिए उदुम्बर आदि द्रव्य बतलाये हैं इनसे सत्त्व-द्रव्य को इन्कीस बार भावित कर सूर्यपुट में रखें। पश्चात् तीनों प्रकार का क्षीरकन्द, जम्बीरकन्द, मित्रपञ्चक की औषधियाँ तथा मांसमेदी, पत्थरफोड़ी, सुहाग, नीसादर, सज्जीखार इन पांच द्रव्यों को ग्रहण करें फिर सबको सोलह भाग लेकर विजौरा नीबू, अनार, जम्बीरी नीबू, चणकाम्ल इनके रस में मर्दन करें पश्चात् इस कलक के मध्य में द्रव्य को रखकर अन्धमूषा में रखकर बालुकायन्त्र में रकावें। इसको मन्दाग्नि द्वारा तीन घन्टी तक धीरे-धीरे पाक करें। आकाश-शीतल होने पर निकाल कर देखें तो आरद्र के समान द्रुति दिखाई देगी। इसी विधि से अश्रक आदि सब द्रव्यों की द्रुति हो जाती है ॥ १५-२० ॥

इति पाषाणवज्रमोहाभ्रकटुतिप्रकारः ।

अथ त्रिभोहमारणम्—

शरावे नागवज्रौ च रसकं प्रक्षिपेत्तथा ॥ २१ ॥
आत्वा चिरं द्रवीभूतं, तद्ध्वं च मुहुर्मुहुः ।
राजवृक्षत्वचरचूर्णं विकिरेत्तेन मर्दयेत् ॥ २२ ॥
इत्थं मुहुश्चिरं कुर्वन् त्रिलोहं भस्म जायते ।

एक मिट्टी के शराव को चूल्हे पर रखकर उसमें नाग, वज्र तथा रसक (खर्पर) डाल दें, फिर नीचे से अग्नि दें जब वह द्रवीभूत हो जावे तब उसके ऊपर बार २ अमलतास की छाल का चूर्ण बुरकें दिया एक पीपल के डंडे से या नीम के डण्डे से मर्दन करते रहें। इस प्रकार बहुत देर तक बार-बार करते रहने से पूर्वोक्त द्रव्यों की भस्म हो जाती है ॥ २१-२२ ॥

अथ सर्वलोहमारणम्—

गन्धकं च मनश्शैलं हिङ्गुलं च रसं समम् ॥ २३ ॥

मातुलुङ्गम्लजम्बीररसैः सम्मर्द्य तैर्न तत् ।

शुल्बायोहेमतारादिकांस्पत्राणि लेपयेत् ॥ २४ ॥

इत्थं मुहुः सप्तवारं लेपयेदातपे चिपेत् ।

मृषायामथ संस्थाप्य तत्पत्राण्यधोत्तरम् ॥ २५ ॥

सम्यक् तद्रोधनं कृत्वा पुटयेत्सप्तवारकम् ।

स्वाङ्गशीतलमुद्भृत्य^१ तस्माच्छुद्धृतं^२ ध्रुवम् ॥ २६ ॥

गन्धक, मैनशिल, हिङ्गुल, पारद इनको समान लेकर विजोरी नीबू के रस में तथा जम्बीरी नीबू के रस में मर्दन करें। फत्ता इस कल्क का ताम्र, लोह, सुबर्ण, चांदी तथा कांसी इनके पत्रों पर लेप करें इस तरह बार-बार सात बार लेप करें और सात ही बार उसे धूप में रख दें। पश्चात् इन पत्रों को मृषा में स्थापित करें नीचे ऊपर थोड़ा कल्क पूर्वोक्त गन्धक आदि द्रव्यों का और रख दें फिर भली प्रकार बन्द कर दें तथा गजपुट में रख दें। इस प्रकार सात पुट दें तथा स्वाङ्गशीतल होने पर ही सम्पुट को गजपुट से निकालें। इस विधि से निश्चय ही धातुओं की भस्म हो जाती है ॥२३-२६॥

इति सर्वलोहमारणप्रकारः ।

१—स्वाङ्गशीतलं यथा—

वह्निस्थगेव यद् द्रव्यं सद्युपैति तु शीतताम् ।

स्वाङ्गशीतं तदुच्यते स्वतः शीतत्वं तन्मतम् ।

२—‘तस्माच्छुद्धृतं ध्रुवम् ।’ इत्यपेक्षया ‘तन्निश्चये ध्रुवम्’ पाठेऽप्युक्तं प्रतिभाति ।

अथान्नकमारणम्—

न्योमपत्राणि सौवीरमार्कवस्वरसे चिपेत् ।

त्रिदिनानि ततः क्षिप्त्वा वस्त्रे व्रीहिषु^१ मर्दयेत् ॥ २७ ॥

तद् गृहीत्वा स्तुहीचीरैर्वासानिर्गुण्टिकारसैः ।

वटार्कचीरधुचूररसैः सम्मर्द्य तत्पुनः ॥ २८ ॥

क्रमात् सप्तपुटं कृत्वा^२ सिन्दूरं^३ प्रियते ध्रुवम् ।

अन्नान्नक के पत्र लेकर उन्हें कांजी में तथा भांगरे के रस में तीन दिन रखें। पश्चात् अन्नक को निकाल कर धान्यों के बीच में तथा वस्त्र के मध्य में रखकर मर्दन करें। पश्चात् उसमें सारभाग जो मिले उसे शुद्ध अन्नक समझ कर बड़ तथा आक के दूध में मर्दन करें फिर धतूरे के रस में मर्दन करें तत्पश्चात् पुट दें। इस प्रकार सात पुट देने से निश्चय ही अन्नक की भस्म हो जाती है ॥२७-२८॥

प्रकारान्तरेण गणनमारणम्—

वटमूलस्य च कायैस्ताम्बूलीपत्रसारतः ॥ २९ ॥

वासामस्तस्याचिकाम्भ्यां च मोनाच्या च कठिल्लया ।

पयसा वटवृक्षस्य मर्दितं पुटितं घनम् ॥ ३० ॥

भवेद्विशतिवारेण^१ सिन्दूरं रुचिरं भवेत् ।

अन्नक को बड़ की जड़ के काय में नागरबेल पानों के रस में अहसा, मत्स्याची तथा कठिल्लक (कठगूलर) के रस में तथा बड़ के दूध में मर्दन कर पुट देने से बीस पुट में अन्नक की भस्म सिन्दूर के समान हो जाती है ॥२९-३०॥

इत्यन्नकमारणम् ।

१—व्रीहिषु—व्रीहियुक्तवस्त्रे क्षिप्त्वेत्यर्थः ।

२—‘सिन्दूरं’ इत्यपेक्षया ‘गणनं’ इति पाठः सुष्ठु प्रतिभाति ।

३—सिन्दूरम् = न्योमभस्म सिन्दूरमत्र भवेद्वित्यर्थः ।

अथ वज्रमारकम्—

मेषमस्तुखरक्तेन भावयेदकर्विशतिम् ॥ ३१ ॥
 मुहुः 'सूर्यपुटे' स्थाप्य पुश्चात्तार्जुनीरसैः ।
 वज्रतुण्डाख्यजन्तोश्च जठरे स्थाप्य वज्रकम् ॥ ३२ ॥
 मलपञ्चकसंयुक्तं निक्षिपेद्वज्रमुष्के ।
 पार्वे सृदान्प्रयित्वाथ महागजपुटे दहेत् ॥ ३३ ॥
 मस्मीभवति तद्वज्रं स्वाङ्गशीतलमुद्धरेत् ।

वज्र को भेद तथा खटवज्र के रक्त में धूप में रखकर इक्कीस बार (इक्कीस दिन) भावित करें—फिर तार्जुनी के रस में इक्कीस बार भावित करें। तत्पश्चात् उस वज्र को वज्रतुण्ड (मैंदक) को पेट में स्थापित करें, फिर उसके ऊपर-नीचे मित्रपञ्चक के द्रव्य रखकर उसे वज्र मूषा में स्थापित करें। पश्चात् मूषा की सन्धियों को कपरमिट्टी से बन्द कर महागजपुट में रखकर पकावें। इस विधि से वज्र की भस्म हो जाती है, स्वाङ्गशीतल होने पर उसे निकालें ॥३१-३३॥

अथ रसस्य विचित्रमारकप्रकाराः ।

तत्र प्रथमो मारकप्रकारः—

सिद्धमूलिकनामाख्य-मूलिकास्वरसेन च ॥ ३४ ॥

१—सूर्यपुटं यथा—

द्रव्याणां भावितानानु भावनौपयै रसैः ।

कोषर्षं सूर्यतापे यत् तत्सूर्यपुटमुच्यते ॥

रसतरङ्गिणी—

२—'मलपञ्चकसंयुक्तं' इत्यपेक्षया 'मित्रपञ्चकसंयुक्तं' इति पाठः सुष्ठु प्रतिभाति ।

३—सिद्धमूलिकाः = वनस्पतिविशेषाः रसकर्माणि प्रयोज्याः ।

द्वयं त्रिवारं सम्मर्धं निक्षिपेन्लोहपात्रके ।

ध्माते तु हुलमं भस्म जायते घटिकार्थकं ॥ ३५ ॥

पारद को सिद्धमूलिका और मूलिका नामक वनस्पतियों के रस में तीन बार मर्दन करके लोह के पात्र में स्थापित करें फिर उस पात्र को बूल्हे पर स्थापित कर नीचे अग्नि प्रज्वलित करें। इस विधि से आधा घड़ी में पारद की भस्म हो जाती है ॥३४-३५॥

अथ द्वितीयो मारकप्रकारः—

गन्धकं द्रुततुण्यं च क्षिप्त्वा तन्मूलिकारसैः ।

रक्तमण्डल-धुतूररसैः सम्मर्धं निक्षिपेत् ॥ ३६ ॥

बालुकायन्त्रभागंश्च काचकुप्यां च पाचयेत् ।

दिनार्धे नयनानन्दं सिन्दूरं भवति ध्रुवम् ॥ ३७ ॥

शुद्ध पारद और गन्धक समान भाग लेकर उन्हें मूलिका के स्वरस में मर्दन करें तत्पश्चात् लाल चित्रक तथा धतूरे के रस में

ये रसमूलिकाः तानाह ।

सर्पाही श्रीगिणी वन्या मत्स्याची राज्ञुणिका ।

काकजङ्घा शिलिशिखा मण्डवचक्राक्षुर्गणिका ॥

वर्षादूः कन्दुकी दूर्वा सैयकोत्पलशिमिका ॥

शातावरी वज्रजता वज्रकन्दोऽनितकणिका ॥

मयदूकपर्णी पाताली चित्रको श्रीपञ्चसुन्दरः ।

ककमाची महाराष्ट्रो हस्तिना लिजर्गणिका ॥

१—इमेष्टाकेशिमुवत्स-सुगर्वा रसाहुषा ।

२—रस्मा रक्षा च क्षिपुण्डी जज्जालुः सुरदाणिका ॥

३—जाती लयन्तो श्रीदेवी भुक्तदन्त-कुसुमकः ।

४—कोषातकी वारकणा काहली कटुमुष्णिका ॥

५—ककमर्दोऽमृताक्रन्दः सुर्वावर्णोऽपुञ्जिकः ।

६—वाराही हस्तिगुण्डी च प्रायोऽम्बु रसमूलिकाः ।

एक-एक दिन मर्दन करें फिर काचकूपी में रखकर बालुकायन्त्र द्वारा पाक करें। इस क्रिया से आधे दिन पाक करने से ही नेत्रों आनन्द देने वाला अर्थात् अत्यन्त सुन्दर सिन्दूर सिद्ध होता है ॥ ३६-३७ ॥

अथ रसेश्वरकृष्णमसम्—

तन्मूलिका-रसेनैव नीलशृङ्गी-रसेन च ।

कृष्णवर्णत्वमायाति स्रुतो जम्बूफलोपमः ॥ ३८ ॥

प्रथम पारद को मूलिका के स्वरस में मर्दन करें तत्पश्चात् नीलशृङ्गी के रस में मर्दन कर पाक करें तो पारद की जासुन के फल से समान काली भस्म हो जाती है ॥ ३८ ॥

अथ रसस्य पीतमसम्—

तन्मूलिका-रसेनैव कासायाः स्वरसेन च ।

पीतवर्णं भवेद्भस्म यामार्धे सुमनोहरम् ॥ ३९ ॥

प्रथम मूलिका के स्वरस में पारद को मर्दन कर तत्पश्चात् कास के रस में मर्दन कर पाक करें तो आधे ग्रहण में पारद की पीले रंग की भस्म हो जाती है। यह अत्यन्त मनोहर होती है ॥ ३९ ॥

अथ रसस्य श्याममसम्—

तन्मूलिका-रसेनैव कृष्णोन्यच-रसेन च ।

श्यामवर्णं भवेद्भस्म यामार्धे सुमनोहरम् ॥ ४० ॥

प्रथम पारद को मूलिका के स्वरस में मर्दन कर तत्पश्चात् काले घृतरे के रस में मर्दन कर पाक करें तो आधे ग्रहण में ही अत्यन्त मनोहर श्यामवर्ण की भस्म हो जाती है ॥ ४० ॥

रसस्य कर्बुरं भस्म—

तन्मूलिका-रसेनैव जम्बूमूल-रसेन च ।

मर्दयेत् सूतराजेन्द्रं कर्बुरं भवति क्षणात् ॥ ४१ ॥

पारद को प्रथम मूलिका के रस में तत्पश्चात् जासुन की जड़ के रस में मर्दन करें तो पारद कर्बुर (मटियाली) रंग का शीघ्र हो जाता है ॥ ४१ ॥

पूर्वोक्तवर्णानां भस्मनां गुणविशेषाः—

श्वेतवर्णं ज्वरघ्नं च रक्तवर्णं त्रिदोषनुत् ।

पीतवर्णं हरेत्कुष्ठं श्यामलं सर्वदोषनुत् ॥ ४२ ॥

कृष्णवर्णं मनुष्याणां सेवया देह-सिद्धिदम् ।

कर्बुरं वृष्यकारि स्यादभीष्ट-गुणदं भवेत् ॥ ४३ ॥

अब पारद की विविध प्रकार की भस्मों के गुण बतलाते हैं—
श्वेतवर्ण की पारद भस्म ज्वर को दूर करने वाली है। रक्तवर्ण की पारद भस्म त्रिदोष को नष्ट करती है। पीतवर्ण की कुष्ठ को नष्ट करती है। श्यामवर्ण की सब दोषों को दूर करने वाली है। कृष्णवर्ण की भस्म सेवन करने से मनुष्यों को देह की सिद्धि देने वाली है। कर्बुर (मटियाली) भस्म बाजीकरण है तथा इच्छित गुणों को देने वाली है ॥ ४२-४३ ॥

अथ सिद्धपूजाविधिप्रकाशः—

अथ वक्ष्यामि स्रुतस्य सिद्धपूजाविधिक्रमम् ॥ ४४ ॥

शुक्लपत्रे त्वशुन्ये च समुहूर्ते शुभे दिने ।

एकान्ते भृगुहे शुद्धे दृष्ट्वा कर्म समारभेत् ॥ ४५ ॥

सम्यग् जितेन्द्रियो भूत्वा दन्तधावनपूर्वकम् ।

कृत्वा तु मङ्गलं स्थानं शुचिर्भूत्वोपवासकम् ॥ ४६ ॥

अधःशायी ब्रह्मचारी नियमैकः समाचरेत् ।

गृहमध्ये विरच्यादौ सहस्रदल-पत्रकम् ॥ ४७ ॥

प्रागाद्यष्ट-दिशास्तस्य पश्चान्यष्ट-दलानि च ।

पृथक् प्रदेशे पद्मानि नवाष्टदलसंयुतम् ॥ ४८ ॥

सहस्रदल-पद्मोत्थं रसं शुद्धं च निक्षिपेत् ।
 अष्टदिक्-सर्वपदार्थ-मुपवेष्ट्याष्ट-सिद्धकान् ॥ ४६ ॥
 नवनाथान् सिद्धकान् नवदुर्गाश्च ताः स्त्रियः ।
 कृत्वाध्वपात्र-सौगन्धि गन्धपुष्पैर्मनोहरैः ॥ ४७ ॥
 धूपदीपैरलङ्कृत्य दिव्यवस्त्रैः प्रपूजयेत् ।
 दिव्यान्नैर्मधुमांसैश्च ग्रीष्मयित्वा च तान्नरः ॥ ४८ ॥
 नमस्कृत्य स्वयं तेषां तासां चाधानुयाचयेत् ।
 अथवा बुद्धिहीनोपि तूष्णीं भोजनमाचरेत् ॥ ४९ ॥
 सोऽपि शीघ्रं मतिं गत्वा तस्य वंशचर्यो भवेत् ।

अथ पारद की सिद्ध पूजाविधि का क्रम लिखते हैं—शुक्लपत्र में तथा जो दिन शुभ्य न हो ऐसे अशुभ्य दिन में, शुभ सुहृत् तथा शुभ दिन में, एकान्त में, जमीन के भीतर गृह में शुद्धता देल कर कर प्रारंभ करें। रस की सिद्धि करने वाला मनुष्य भली प्रकार जितेन्द्रिय होकर व्रतवाचन करके माङ्गलिक स्नान करें और पवित्र होकर उपवास करें। जमीन पर सोये, ब्रह्मचर्य तथा नियम से रहे, घर के मध्य में कमल के पत्तों से गण्डप बनावें। पूर्व-पश्चिम आदि आठों दिशाओं में कमल के आठ पत्र लगावें, नीचे के प्रदेश में पृथक् पृथक् नौ और आठ दलों से युक्त कमल के पत्र बिछावें फिर कमल के पत्र के ही ऊपर पारद की स्थापित करें। आठों दिशाओं में कमल के पत्रों पर आठों सिद्धों की स्थापित करें। सिद्धि को देने वाले नौ नाथों को और नव दुर्गाओं की स्थापित करें। प्रथम अर्घ्य देवों स्नान करावें सुगन्धित द्रव्य (इत्र-तेल आदि) तथा सुगन्धित पुष्प चढ़ावें, धूप दीपों से अलङ्कृत करें तथा दिव्य तथा मनोहर वस्त्रों से पूजा करें,

१—श्लोकोऽयं प्रकृतार्थविस्मयादीति प्रतीयते ।

दिव्य-अन्न मधु, मांस आदि से मनुष्य उनको प्रसन्न करके नमस्कार करके इच्छित कामना की उनसे याचना करें ॥ ४४-४९ ॥

इति सिद्धपूजाविधिक्रमः ।

अष्टोत्थसिद्धिगुटिकाप्रकारः—

अङ्गोलाकर्कपलाशादि-कण्टकी-गिरिकर्णिकाः ॥ ५३ ॥
 सुरदाली च गुञ्जा च क्षुद्रालक-पुनर्नवाः ।
 एते दश द्रुमाः श्वेत-केसराः श्वेतपुष्पकाः ॥ ५४ ॥
 तेषां तुल्यानि बीजानि चूर्णीकृत्यातिस्वप्नकम् ।
 तन्मूलत्वग्रसेनैव अजाक्षीरेण भावयेत् ॥ ५५ ॥
 तैलमर्कपुटेनैव उद्धृत्य बहु संग्रहेत् ।
 शुद्धसूतं पलन्त्येकं तैलं तप्तुन्ययावकम् ॥ ५६ ॥
 अधरोत्तरकं कृत्वा वज्रमूपान्तरे क्षिपेत् ।
 ध्मात्वा सुहृत्मात्रेण बद्धो भवति तद्रसः ॥ ५७ ॥
 अनेन सर्वे पापाण्यं रागवद्वत्त्वमाप्नुयात् ।
 इष्टार्थसिद्धिगुटिका नाम्ना लोके प्रकीर्तिता ॥ ५८ ॥
 एतामेव जलोत्पन्ननारिकेलेन पाचयेत् ।
 निक्षिपेद्वाचि यो धीमान् देवैरपि न हर्यते ॥ ५९ ॥
 जललोहाग्निशुल्बादि वाचास्तम्भं करोति च ।
 कृष्णगोक्षीरसारेण पक्त्वा वाचि त्वहर्निशम् ॥ ६० ॥
 तत्सारसेवया देहसिद्धिर्मांसत्रयाद्भवेत् ।
 आयुष्यवृष्य-सन्तान-तेजो-बलकरो भवेत् ॥ ६१ ॥
 पशुमाससेवया नित्यं जरामरणवर्जितः ।
 गरुमद्-पथितैलेन दोलापन्त्रेण पाचयेत् ॥ ६२ ॥

निचिपेन्मस्तके लोके वर्यं भवति तद् ध्रुवम् ।
 हस्ते वाकर्षणं वाचि सारस्वतकरो भवेत् ॥ ६३ ॥
 यस्यासौ गुटिकासिद्धिर्भवत्यस्य गृहेऽनिशम् ।
 सर्वैश्वर्याणि तिष्ठन्ति तद्राज्यं सुस्थिरं भवेत् ॥ ६४ ॥
 भूतप्रेतपिशाचादि-दुष्टग्रहनिवारणम् ।
 सर्वारोग्यकरं तस्य कालमृत्युजयो भवेत् ॥ ६५ ॥
 इष्टार्थसिद्धिरस्य स्यात् कालमृत्युजयो भवेत् ।
 ताम्रशुद्धिं ततः कृत्वा धुत्तरीरस-भावनैः ॥ ६६ ॥
 रसस्य स्पर्शमात्रेण जाम्बूनदमयो भवेत् ।
 तत्ताम्रस्पर्शमात्रेण रजतोपि भवेत्ततः ॥ ६७ ॥

अथ मनोवाञ्छित अर्थ की सिद्धि देनेवाली गुटिका का विधान लिखते हैं—अङ्गोल, आफ, पलाश, कटेरी, कोयल, देवदाली, घूघची, छोटी कटेरी, सफेद फूल वाला आफ, पुनर्नवा ये दश वृक्ष सफेद केसर तथा सफेद फूल वाले हैं। इनके बीज समान भाग लेकर उनका अत्यन्त महीन बूर्ण कर लेवें पश्चात् इस बूर्ण को मूलिका के रस से तथा बकरी के दूध से भावित करें फिर इसे तीव्र धूप में रख दें। इसके ऊपर जो तेल की बिन्दु तथा कण आ जायें उन्हें धीरे-धीरे संग्रह कर लेवें। पश्चात् एक पल शुद्ध पारव तथा इतना ही पूर्वोक्त तेल ग्रहण करें फिर दोनों को सर्वन करके बज्रमूषा में स्थापित करें पश्चात् एक मुहूर्त तक अग्नि के योग से पारव को घमावें इस क्रिया से पारव बद्ध हो जाता है। इसके योग से सब पापाय रागबद्ध (रंजित) हो जाते हैं। इसको संसार में इष्टार्थसिद्धि गुटिका कहते हैं। इसको नारियल के पानी में डाल कर उबाल लेवें पश्चात् उस जल को जो बुद्धिमान पान करे वह अदृश्य हो जाता है उसे देवता भी नहीं देख सकते। यह

जल, लोह, अग्नि, ताम्र, वाणी इनका स्तम्भन करता है। इस गुटिका को काली गाय के दूध में एक दिन और रात पकावें पश्चात् उस दूध को सेवन करें तो इसके सेवन से तीन मास में वेह क्री सिद्धि होती है। यह आयु को बढ़ाता है, वृष्य है, सन्तान, तेज तथा बल को देने वाला है। इसके छः मास तक नित्य सेवन करने से मनुष्य बुढ़ापा और सृत्य इनसे रहित हो जाता है। गरुत्मान् (गरुड़) पक्षी के तेल (वसा) में गुटिका को पका कर मस्तक में धारण करने से मनुष्य को वशोकरण शक्ति प्राप्त होती है। वह फिर जिसे चाहे वश में कर सकता है। हाथ में रखने से वाणी क्री शक्ति बढ़ती है वह वाक्यदु हो जाता है। उसकी तरफ आकर्षण होता है। मुख में रखने से जिसको इस गुटिका की सिद्धि हो जाती है उस मनुष्य के घर में सब प्रकार के ऐश्वर्य होते हैं उसका राज्य स्थिर रहता है। यह भूत, प्रेत, पिशाच आदि दुष्ट ग्रहों का निवारण करती है सब रोगों से मुक्त करती है तथा कालरूपी सृत्य को भी जीतनेवाली है। इसके द्वारा अभिलषित कामना की सिद्धि होती है। प्रथम ताम्र को शुद्ध कर पश्चात् उसे घटुरे के रस से भावित करें फिर उस ताम्र का पारव की गुटिका से स्पर्श करा दें तो वह सुवर्ण हो जाता है। इस ताम्र के स्पर्श कराने से चाँदी का भी सुवर्ण हो जाता है ॥ ६३-६७ ॥
 इति शार्ङ्गसिद्धिगुटिकाप्रकारः ।

अथ रसस्य वीपनप्रकारः—

॥ १ ॥ अक्षदण्डी च चण्डाली चित्रमौर्व्याचिकित्त्वचः ।
 द्विधरं तुत्यलवणं नवसारं समांशकम् ॥ ६८ ॥
 ॥ मातुलुङ्गरसैर्मघं बद्धस्याप्यधरोचरम् ।
 चिप्ता बह्वी शनैर्धर्मात्वा स्वाङ्गशीतलमुद्धरेत् ॥ ६९ ॥
 ॥ उद्धरेत् सप्तवारं कृत्वा मृपान्तरे चिपेत् ।
 तद्वीपनमुखो भूत्वा क्षुधातो व्याघ्रवद्वरेत् ॥ ७० ॥

लोहजालसमुद्रस्य

वडवानलवद्भवेत् ।

ब्रह्मदेवी, चाण्डाली, चित्रक, मूर्धा, अर्धिका (?) की जात
जबाखार, सज्जीखार, त्रिविया, संधा नमक, नौसावर इनको समान
भाग लेकर विजोरा नीचू के रस में मर्दन करें पश्चात् मूषा के मूत्र
में पारद को रखें उस पारद के नीचे-ऊपर पूर्वोक्त कण्ठ को रखें
पश्चात् उसे अग्नि पर धीरे-धीरे धमावें, स्वाङ्गणीतल होने पर निकाल
लेवें इस प्रकार सात बार करें। ऐसा करने से पारद का दीपन होता
है वह सुखवाला हो जाता है, व्याघ्र के समान जुधा से पीड़ित होता
है। वह सम्पूर्ण धातुओं को खसुद्र की बडवानल के समान दीप्त
होकर खा जाता है ॥६८-७०॥

इति दीपनप्रकारः ।

अथ प्रासादानप्रकारः—

ततस्तस्य चतुर्थांशं ग्रासं दत्त्वा मुहाटकम् ॥ ७१ ॥
भूसारसरुदन्त्याश्च स्वरसं पूरयेन्मृदुः ।
अतपे याममात्रेण जीर्णं भवति हाटकम् ॥ ७२ ॥
पुनस्तस्य तृतीयांशं ग्रासं दत्त्वा क्षणं भवेत् ।
द्वितीयांशं पुनस्तु शं दधते च तथोत्तरम् ॥ ७३ ॥
समांशं निविपेदेवं ग्रासयित्वा च बुद्धिमान् ।
तद्वर्धं सर्वलोहानां क्रमं ज्ञात्वा विनिर्दिशेत् ॥ ७४ ॥
प्रतिक्षणं प्रतिदिशेदधिकं दीपनं भवेत् ।
यथा पलप्रमाणस्य रसबद्धस्य हाटकम् ॥ ७५ ॥
सहस्रपल-मादातुं ग्रासं चेद्यदि शक्तिमान् ।
तथा तस्य मुखं बद्धं क्षमो भवति दैविकम् ॥ ७६ ॥
यदि वा तद्बद्धरचेवृशक्यो धूर्जटेरपि ।

क्रियन्ति लोहजालानि सन्ति सर्वाणि भूतले ॥ ७७ ॥

ग्रासं दातुं तुसंपूर्णं ब्रह्मा सम्यक् प्रशंसते ।

बुभुक्षित पारद से चतुर्थांश सुवर्ण लेकर उसके साथ मर्दन करें
पश्चात् उसी खरल में भूसारस (कदम्ब ?) और कद्रवन्ती का रस
डाल कर घूप में रख देंगे। इस क्रिया से एक ग्रहर में सुवर्ण जीर्ण
हो जाता है। फिर यदि पारद का तृतीयांश सुवर्ण लेकर ग्रास दिया
जावेगा तो पारा शीघ्र ही ग्रास कर जावेगा। फिर इसी विधि से
पारद से आधे सुवर्ण का ग्रास देंगे फिर पारद से आधे सुवर्ण का
ग्रास देंगे पश्चात् समान भाग सुवर्ण का ग्रास देंगे इससे अधिक भी
ग्रास देना हो तो क्रमानुसार देंगे। जितना अधिक ग्रास दिया जावेगा
उतनी ही अधिक पारद की ग्रास की शक्ति बढ़ेगी। यदि एक पल बद्ध
पारद में एक हजार पल सुवर्ण का ग्रास दिया जावे तब उसके मुख
को बद्ध करने के लिये देवता ही समर्थ हो सकते हैं। यदि वह
अबद्ध हो जावे तो इसको बद्ध करना शंकर के लिये भी कठिन है।
पृथ्वी पर कितनी ही धातुयें तथा उनके द्वारा पारद को बद्ध करने
के उपाय हैं सम्पूर्ण प्राणों को देने से ब्रह्मा भी प्रसन्न होते हैं ॥७१-७७॥

इति प्रासप्रकारः ।

अथ रसमुलबन्धप्रकारः—

रसबन्धस्य मर्मातिगूढं वक्ष्यामि गूढवान् ॥ ७८ ॥

समन्त्रशुक्तमाग्रेण गूढं तद्गूढमाचरेत् ।

कृष्णगोरोचनं कृष्णसारोचनमेव च ॥ ७९ ॥

अथमार्तवजं रक्तं गजशुक्तं चतुष्टयम् ।

एतत्सर्वं समांशं च स्त्रीस्तन्येन च मर्दयेत् ॥ ८० ॥

त्रिभिन्दुमात्रं तद्गूढम् मन्त्रशुक्तं प्रयोजयेत् ।

पारद के बन्धन का मर्मयुक्त जो अत्यन्त गुड़ उपाय है उसके कहेंगे यदि मन्त्र के साथ इस बिधि से आचरण किया जावेगा तो अवरय ही पारद बढ़ होगा। काला गोरोचन, कृष्णसार रोचन पहिली बार जो श्री राजस्वला हुई हो उसके आर्तव का रक्त गजशुष्क (१) इन चारों को समान भाग लेकर श्री के दूध में मर्दन करें मन्त्र उच्चारण करते हुए पूर्वांक कल्क को तीन विन्दु डालकर पारद को मर्दन करने से पारद बढ़ हो जाता है ॥ ७८-८० ॥

अथ पारदमुखवन्दनमन्त्रः—

मन्त्रः—ॐ षट्षटाय महारसमैरवाय मुखं बन्ध

मुखं बन्ध सुमीटय सुमीटय हुं फट् स्वाहा ॥ ८१ ॥

यह पारद के मुख को बाँधने वाला मन्त्र है।

तस्यद्वया तथा धीमान् प्रयोगं कुरुते जगता ॥ ८२ ॥

मुखवन्दनमवाप्नोति रसेन्द्रः सचयो भवेत्।

तस्मिन्काले महाघोषो जायतेऽग्निपातवत् ॥ ८३ ॥

तस्माज्जीवति यो मर्त्यः स ईश्वरसमो भवेत्।

अथवा तद्वयं गत्वा भवतो भवति सो नरः ॥ ८४ ॥

आदौ मैरवमाराध्य निर्विघ्नेन समापयेत्।

महामैरव-मन्त्रेण कुर्याद्राजमयात्मनः ॥ ८५ ॥

यथा तन्मुखवन्धः स्यात् तथा क्षीरे विनिलिपेत्।

एकविंशतिवारं गोक्षीराब्धिं पिबेच्च सा ॥ ८६ ॥

तदूर्ध्वं निलिपेत्कृपे तटाके वा जलाशये।

तज्जलानि च सर्वाणि सप्तरात्रेण सा पिबेत् ॥ ८७ ॥

श्रीचन्दनं च कर्पूरं समांशं मेलयेज्जले।

अहोरात्रं च संस्थाप्य कुर्वीत च सुरक्षितम् ॥ ८८ ॥

गुटिकां तां विनोदाय मस्तके लिप्य यो नरः।

हृज्जल्पपारमर्त्तं च वडवानलवद् भवेत् ॥ ८९ ॥

इस मन्त्र को बिना प्रयोग किये जब प्रयोग करता है तब मुख बन्ध हो जाता है तथा पारद का लय होता है उस समय बहुत तेज अपात के समान आवाज होती है जो मनुष्य सबसे जीवित बन्ध जाता है वह ईश्वर के समान हो जाता है अथवा उसके मय के कारण मनुष्य सुख को प्राप्त होता है। इसलिये प्रारम्भ में मैरव की जा करके उसे निर्विघ्न समाप्त करें। महामैरव मन्त्र से अपनी रक्षा करे। जब पारद का मुख बढ़ हो आवे तब उसे गाय के दूध में डाल दें। इसी दिन में वह गुटिका गाय के बहुत से दूध का पान कर लेगी इसके पश्चात् कृप, तालाब आदि में डाल दें उस जल में वह सात दिन में पान कर लेगी। चन्दन और कर्पूर इनको समान भाग लेकर चूर्ण कर जल में छोड़ दें और उस जल में एक दिन-तक गुटिका को रहने दें। इस गुटिका को विनोद के लिये यदि मनुष्य मस्तक में धारण कर लेवे तो वह मनुष्य बहुत सा अन्न खाता है उसकी अग्नि वडवानल के समान हो जाती है ॥ ८९-९१ ॥

इति रसमुखवन्दनप्रकारः।

अथ वैद्यमुत्तरः—

गन्धकाप्रकृतैर्ल तद् प्राप्तं दत्त्वा सुबुद्धिमान्।

पञ्चसाहस्रवेधो च तारे नामे तथा भवेत् ॥ ९० ॥

अयस्ताम्रद्वयेऽर्धं च वज्रं च द्वादशं भवेत्।

अन्नकस्य द्रुतिं सम्यग् मेलयित्वा रसेन च ॥ ९१ ॥

गुटिका सा क्षयाख्या च आकर्ष्यान्ते धयी भवेत्।

तथास्तेवया वाचि मोहजालं विनाशयेत् ॥ ९२ ॥

ताम्रांसं च कुरुते वज्रताम्रद्वयेऽर्धकम्।

सहस्रदशवेधो च शुद्धतारो भवेत् पुनः ॥ ९३ ॥

गन्धक का लेह और अभ्रक की द्रुति का मास बुद्धिमान मनु
को चाहिये कि वह पारद में देवे, ऐसा करने से पारद मास का
चौरी में पाँच हजारवें भाग से वेष करने वाला हो जाता है। ले
और ताम्र आधा २ भाग और वज्र बारह भाग और फिर उसमें अ
प्रकार अभ्रक की द्रुति और पारद मिलावें यह क्षयाख्या गुटिका
जाती है। इसकी सेवन करने से बाण्डी का मोहजाल नष्ट होता
वेधालुख पारद चौरी का मास करने वाला है। वज्र और ताम्र
दोनों को आधा-आधा मिलाकर इस पारद के दस हजारवें भाग
वेष करने पर शुद्ध चौरी हो जाती है ॥६०-६१॥

इति वेणामुलरसप्रकारः ।

यथ धूमवेधी रसः—

सहस्रवेधी पाषाणं माक्षिकं च मनरिशला ।

हिङ्गुलं तालकञ्चैव हरिद्राख्यं च गन्धकम् ॥ ६४ ॥

एतत्सर्वं सप्तं कृत्वा मातुलुङ्गाम्भमर्दितम् ।

चणुप्रमाणवटिकां कृत्वा ग्रासं ददाति च ॥ ६५ ॥

वटप्रिशतपुटमात्रेण धूमवेधी भवेद्रसः ।

लोहसिद्धिर्यथैवाभूद् देहसिद्धिर्भवेत्तथा ॥ ६६ ॥

पारद, सुवर्ण माक्षिक, मैन्शिल, हिङ्गुल, हरिताल, हरिद्र वि
गन्धक इन सबको समान भाग लेकर किलौरा नीचू के रस में म
करें पदार्थ बने की बराबर गोली बना कर उसका मास देवे
इसके क्षीय मास देने से पारद धूमवेधी हो जाता है। इसके योग
जिस तरह लोह-सिद्धि होती है उसी तरह देह-सिद्धि भी होती है

इति हिल्मी-टीकायां रसकोमुदी

विधियोंधिकारः ।

अथ तृतीयोऽधिकारः

यथ जगन्मोहनरसः—

‘नवरत्नाष्टलोहानां’ भस्म द्रुतस्य मस्य च ।

कृत्वा समांशं तत्सर्वं मेलयित्वा विस्मयः ॥ १ ॥

तत्त्रिंशदां विषं कुप्यं त्रिकटु त्रिफला तथा ।

टङ्गुलं गन्धकं चैव माक्षिकं च मनरिशला ॥ २ ॥

एतत्सर्वं विनिक्षिप्य मर्दयेत् करण्डके ।

तस्य सर्षपमात्रन्तु प्रयोगं कुरुते शिष्यक ॥ ३ ॥

रत्नेष्वाजराणां भृङ्गस्य रसेन गुडसंयुतम् ।

पित्तज्वराणां ‘मैरेय-रसशर्करयान्वितम् ॥ ४ ॥

वातज्वराणां स्वरसैर्नागवल्लीया दलस्य च ।

एकादिकदथाहिकस्य भूधात्री-स्वरसेन च ॥ ५ ॥

—यथ स्वानि यथा—

मुक्ताफलं हीरकञ्च वैद्युतं पद्मरागकम् ।

पुष्परागञ्च गोमेदं नीलं नालम्बतं तथा ॥

प्रवालमुक्ताम्बेयानि महास्तानि वै नव ।

—यत् लोहानि यथा—

सुवर्णं रजतं ताञ्जं त्रयं कृष्णायमं समम् ।

महाङ्गमिति मोदक्यं द्वितीयं पञ्चलोहकम् ॥

वन्धकोहसमायुक्तैः कान्त-सुवर्णकतीक्ष्णकैः ।

कल्पितः कथितो धीरैरष्टकीहानिचो यथा ॥

३-मैरेयं / वातकीपुण्यं गुडं आम्बान्मसंहितम् ।

व्याहिकस्याजदुग्धेन तथा चातुर्थिकस्य च ।
 विषमाणां ज्वराणां च निम्बपत्ररसेन च ॥ ६ ॥
 अमिषातस्य गोजिह्वा-रसेन मधुना सह ।
 दोषज्वरस्य वासायाः शिशुमूल-रसेन च ॥ ७ ॥
 तप्तनिमिषोत्पन्नानां ज्वराणां कण्टकीरसैः ।
 त्रिदोषाणां च सर्वेषामाद्रकस्य रसेन च ॥ ८ ॥
 ईदग्विधानुपानैश्च ज्वराणां च प्रयोजयेत् ।
 सर्वाङ्गवातिकस्यार्क-मूलानां स्वरसेन च ॥ ९ ॥
 धनुर्वातस्य निर्गुणक्या पक्ष्वातस्य चामया ।
 सुप्तवातस्य गोमूत्रैः शेषवातस्य पूर्ववत् ॥ १० ॥
 तथा शृङ्खिकवातस्य शृङ्गकेसरकान्वितम् ।
 तदन्येषां च वातानां सर्वेषामुष्णवारि तत् ॥ ११ ॥
 तप्तसौम्यानुपानैश्च प्रयोगं कुरुते क्रमात् ।
 सर्वाङ्गं रवेतकुष्ठश्च ३ नीलमृत्नी-रसेन च ॥ १२ ॥
 तदन्येषां च कुष्ठानां मधुना सम्प्रयोजयेत् ।
 जलोदरस्य भूदन्तीमूलानां स्वरसान्वितम् ॥ १३ ॥
 महोदरस्य भूनिम्ब-वज्रतैलेन योजयेत् ।
 अन्येषामुदराणां च गिरिकर्णिकया समम् ॥ १४ ॥

१—स्वपन्थज्ज्ञानि वातेन यस्मिन्स्तत्सुप्तवातकम् ।

२—अथवा शृङ्खिकवाते तु मया शृङ्खिकविह्वलम् ।

३—"सर्वाङ्गं रवेतकुष्ठश्च" इत्यत्र 'सर्वाङ्गरवेतकुष्ठे तु' इति पाठः सुष्ठु प्रति-
 भाति ।

अश्रमयां शर्करायुक्तमश्रममेदी-रसेन च ।
 बहुमूत्रस्य कण्टक्या मूलानां स्वरसेन च ॥ १५ ॥
 मधुशुक्रैस्तु मेहार्तः..... लपोटक-संयुतम् ।
 रक्तमेहस्य मोक्षीरैर्नवनीतेन वा तथा ॥ १६ ॥
 कम्पूत्रं तक्रमेहस्य उदुम्बर-रसेन च ।
 तदन्येषां च मेहानां तिलपिष्टरसान्वितम् ॥ १७ ॥
 अशीसां गुह्ययुक्तेन काकोदुम्बरिकान्वितम् ।
 मूष्णवाद्रकसैर्धुक्तं शूलानां च प्रयोजयेत् ॥ १८ ॥
 गुल्मानां च कुबेराची-चिञ्चा-मम्म-रसेन च ।
 वह्निचूर्णेन पाण्डूनां जयशोफस्य गोपयः ॥ १९ ॥
 क्षयस्य मोतेष्ट्रनैव कदलीरस-संयुतम् ।
 कर्मलायां निशायुक्तं कण्टकीस्वरसेन च ॥ २० ॥
 शिरःशूलदिरोगाणां शुष्यानस्य करोति च ।
 प्रणानामखिलानां च लेपयेद् गोघृतेन च ॥ २१ ॥
 तुलसीरससंयुक्तं नाशयेद् सर्ववान्तिकम् ।
 महागदानां सर्वेषां सेवयेदेक-मण्डलम् ॥ २२ ॥
 अर्चमण्डलमात्रं तदन्येषां सम्प्रयोजयेत् ।
 महारोगप्रयोगाद्यामीषधं सर्पपट्टयम् ॥ २३ ॥
 त्रिभासं सेवयेदित्यं देहसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
 त्रिसंवत्सरमात्रेण जरा-मरण-वर्जितः ॥ २४ ॥

१—'शुष्ण्या मय्यं करोति च' पाठोऽयं प्रतिभाति ।

२—मण्डलम् = अष्टपञ्चवारिखण्डितपरिमितः काष्ठः ।

पातालमधुशोधीर-नवनीतामुपानयैः ।

सेवयेच्छर्करासुक्तं तत्पथ्य-नियमं विना ॥ २५ ॥

सेवयेत् पुदिमान् मत्स्यो ब्रह्मकन्यं स जीवति ।

जगन्मोहननाम्नायं रसो लोकप्रकीर्तितः ॥ २६ ॥

मोरी, हीरा, वैद्य, माणिक्य, पुलराज, गोमेद, नीलम, पद्म, मृगा, सुवर्णादि आठों बातुओं की भस्म, पारद भस्म इन सब पृथक्-पृथक् समान भाग ग्रहण करें। इन सब द्रव्यों के चूर्ण तीसवां भाग विषशुद्ध, कूठ, हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर, पीपल, सुहागा, शुद्ध गन्धक, सुवर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध कैमिल, सब का चूर्ण पृथक्-पृथक् ग्रहण करें। पञ्चातुस्र को एक स मर्दन कर बांस की कूपी में अथवा काच की शीशी में रख लें।

वैद्य को चाहिये कि जगन्मोहन रस को एक सरसों की बराबर मात्रा में प्रयोग करें। इस रस को कफ के ज्वरों में भाङ्गरे के और शुद्ध के साथ प्रयोग करें। पित्त ज्वरों में मेरेय (आसव विरो) और शकर के साथ सेवन करें। वातज्वरों में वागरबेल (पान) के रस के साथ प्रयोग करें। एकाहिक और वृषाहिक ज्वरों में भी आमला के रस के साथ प्रयोग करें। तिजारी में तथा चौथ्य ज्वर में बकरी के दूध के अनुपान के साथ सेवन करावें। सब प्रकार के विषम ज्वरों में नीम के पत्ते के रस के साथ सेवन करावें। अमिषात ज्वर में गोजिया का रस और शहद मिलाकर सेवन करावें। शोथ ज्वर में अबुसा और सहजने के रस के साथ सेवन करावें। सब प्रकार के सन्निपात ज्वरों में अदरक के रस के साथ सेवन करावें। इस प्रकार के अनुपानों के साथ इस रस को ज्वरों में प्रयोग करें। सर्वाङ्ग वात में आक की जड़ के रस के साथ सेवन करावें। घनुर्वात में संभाल की जड़ के रस के साथ तथा पञ्चापात हरड़ के काथ के साथ सेवन करावें, सुप्तवात में तथा शोथ वातों में गोमूत्र के साथ सेवन करावें। वृश्चिक वात में काकड़ासिकी और

सर के साथ सेवन करावें और जितने भी वातरोग हैं सबमें गरम जली के साथ सेवन करावें। जिस-जिस रोग में जो अनुपात अनु-हल हो उसी के साथ सेवन करावें। यदि सब शरीर में श्वेत कुष्ठ हो गया हो तो नील तथा आंगरे के रस के साथ सेवन करावें। और भी जितने कुष्ठ हैं उन सब में शहद के साथ सेवन करावें। जलोदर में दन्ती की जड़ के रस के साथ सेवन करावें। महाजलोदर में चिरायता और यूहर से सिद्ध क्रिये तेल के अनुपान के साथ सेवन करावें। और दूसरे जो उदर रोग हैं उनमें क्रोयल के साथ सेवन करावें। शर्करा युक्त अश्वरी में बाबाखभेद के रस के साथ सेवन करावें। बहुमूत्र में कटेरी की जड़ के काथ के साथ सेवन करावें, मधु-मेह, शुक्रमेह तथा श्मश्रुमेह में (गोलरु के रस) के साथ सेवन करावें, रक्तमेह में गाय के दूध अथवा मक्खन के साथ सेवन करावें। तक्रमेह में गोमूत्र अथवा गूलर के रस के साथ सेवन करावें और दूसरे प्रमेहों में खिलवर्णी के रस के साथ सेवन करावें। बवासीर में कठ-गूलर और शुद्ध के साथ सेवन करावें। शूलों में गोरखसुण्डी और अदरक के रस के साथ सेवन करावें। सब प्रकार के शुभ्रों में कुबेराची तथा हमली के चार के जल के साथ सेवन करावें। पाण्डु रोग में चित्रक के चूर्ण के साथ तथा अयस्य शोथ में गाय के दूध के साथ सेवन करावें। अयरोग में गाय का घृत और केले के रस के साथ सेवन करावें। कामला में हलदी के चूर्णयुक्त कटेरी के रस के साथ सेवन करें। शिरशूल आदि में सोंठ के चूर्ण के साथ इसका नस्य दें। सब प्रकार के प्रणों के ऊपर गाय के पी में मिला कर इक्का लेप करें। तुलसी के रस के साथ इसे सेवन कराने से सब प्रकार की कलटियों को नष्ट करता है। इस रस को दाहण रोगों में अष्टतालीस दिन सेवन करावें तथा साबारण रोगों में त्रौबीस दिन सेवन करावें। महारोगों में इस औषधि का यदि प्रयोग करना हो तो दो सरसों की बराबर मात्रा में दें। इसकी तीन मास तक निरन्तर सेवन कराने से निश्चय ही वैद-सिद्धि होती है। इसके तीन वर्ष के

प्रयोग से मनुष्य बुढ़ापा और मृत्यु इनसे रहित हो जाता है। रस को पातालगावकी का रस, शहद, गाय का दूध, मक्खन और शकर इनके अनुपान के साथ पच्य और नियम के बिना भी सेवन करावे। इसको सेवन करने वाला मनुष्य प्रक्षा के एक कल्प तक जीवित रहता है। यह जगन्मोहन नाम का रस लोक में विख्यात है ॥ १-२६

इति जगन्मोहरसः ।

अथ मनुष्यरसः—

नागवज्राभ्रकाशां च शुचलोद्द्वयोरपि ।
सिन्दूरसिं च पञ्चानां रससिन्दूरमेव च ॥ २७ ॥
एतानि समभागानि एकीकृत्य विचक्षणः ।
नित्यं तत्कृष्ण-कदली-फल-युक्तं तु लेपयेत् ॥ २८ ॥
मधुलेष्टाभ्रपानानि^१ भुञ्जयेद् बहुशो मुहुः ।
संवत्सरार्धमात्रेण जरा-मरणवर्जितः ॥ २९ ॥
दिव्यदेहो भवेन्मर्त्यः सर्वव्याधि-विनाशनः ।
कृष्णागोचीरसंयुक्तं चयाशां च प्रयोजयेत् ॥ ३० ॥
मातुलुङ्गफलाभ्युन सेवयेदर्धमण्डलम् ।
श्वासकासादिहृद्रोग-पीनसान् प्रविशन्ति ये ॥ ३१ ॥
अस्य प्रयोगचातुर्यादनुपान-विशेषतः ।
सर्वे गदा विनश्यन्ति तृणमेव न संशयः ॥ ३२ ॥
पद्ममुखः कथितः सोऽयं रसेन्द्रो देवदुर्लभः ॥ ३३ ॥

१—सिन्दूरसिं = सिन्दूरानुपानम् ।

२—मधुलेष्टाभ्रपानानि शुकीत-पात्रेऽथ प्रविशति ।

नागभस्म, वज्रभस्म, अश्वभस्म, शालभस्म, लोहभस्म ये पाँचों सिन्दूर के समानवर्ण वाली भस्म तथा रससिन्दूर इनको समान भाग मिलाकर। पञ्चात सबको एक साथ मर्दन करें। इस रस को अग्नि और बल के अनुसार काले रंग के केले के फल के साथ सेवन करें। इस रस के ऊपर मधुर तथा मनोवाञ्छित पदार्थों को खूब सेवन करें। इस रस को छः मास तक निरन्तर सेवन करने से मनुष्य बुढ़ापा और मृत्यु इनसे रहित हो जाता है। यह मनुष्य दिव्य शरीर वाला हो जाता है। यह रस सब प्रकार की व्याधियों को दूर करने वाला है। इस रस को ज्वररोग वाले मनुष्यों को काशी गाय के दूध के साथ सेवन करावे। इसको विजौरा नीबू के रस के साथ चौबीस दिन सेवन करने से श्वास, कास, हृद्रोग, पीनस आदि दूर होते हैं। अनुपान विशेष के साथ इसके प्रयोग की चतुरता के कारण सब प्रकार के रोग इसके सेवन से शीघ्र दूर होते हैं इसमें संशय नहीं है। यह पद्ममुख नाम का रस कहा है। यह रस देवताओं के छिपे की दुर्लभ है ॥ २७-३३ ॥

अथ शालभस्मः—

हेमवज्राभ्रकाशां च मस्मत्रयसमांशकम् ।
भूनागितत्त्वमस्मापि^१ तत्समं निक्षिपेद् बुधः ॥ ३४ ॥
कृष्णचित्र-सेनेन मर्दयेच्च दिनवयम् ।
अमृतस्य कषायेण कुमारी-स्वरसेन च ॥ ३५ ॥
त्रिकटु त्रिफलानां च स्वरसेन विभावयेत् ।

१—युगमास्य सत्यप्रातर्विधिसाह—

ताम्रभस्मचतुर्भागान् गृहीत्वा सत्यतः युगम् ।

शुक्लभस्मलुकाशोर्ध्वमस्मपिष्ठाकटकैः ॥

कर्मैतैश्च संयोज्य मर्दयित्वा चतुर्मुखम् ।

मुष्पति ताम्रवत्सत्यं तद्वत्प्रातःपि बर्हिचायम् ॥

द्राक्षाफलान्वितं निस्त्र्यं वृक्षमात्रं प्रयोजयेत् ।
 सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो वज्रदेहो भवेन्नरः ॥ ३६ ॥
 त्रिवत्सर-प्रयोगेण जीवेच्चन्द्रार्कतारकम् ।
 सर्वेषामायुधानां च विषाखां च निवारयम् ॥ ३७ ॥
 सर्वशत्रून्-जयत्याशु भुवि सङ्कीर्तितो भवेत् ।
 सार्षमीरसो ह्येष सर्वराजमनोहरः ॥ ३८ ॥

सुवर्ण, हीरा और अन्नक इन तीनों की भस्म समान भाग ग्रहण करें। इनके बराबर ही केचुप के सत्व की भस्म सिलावें फिर सबको एक साथ काले चित्रक के रस में तीन दिन मर्दन करें। पश्चात् गिलोय के काथ में, घृतकुमारी के रस में, त्रिकुटा और त्रिफला इनके काथ से आधित करें। इस रस को तीन रत्नी की मात्रा में दाल के साथ सेवन करावें। इसके सेवन से मनुष्य सब रोगों से मुक्त हो कर ब्रह्म के समान शरीर वाला हो जाता है। इसके तीन वर्ष प्रयोग करने से मनुष्य जब तक सूर्य और चन्द्रमा का अस्तित्व है तब तक जीवित रहता है। यह सब प्रकार के आयुष (शस्त्रों के घाव) तथा विषों को नष्ट करने वाला है। सब शत्रुओं से शीघ्र ही विजय विजाला है पृथ्वी पर यह प्रसिद्ध है। यह सार्षभी नामक रस सब रसों में श्रेष्ठ तथा मनोहर है ॥ ३४-३८ ॥

यथ नवग्रहरसः

रसं च गन्धकं चैव मौक्तिकं च मनरिशला ।
 कुष्ठं च शङ्खमस्मापि टङ्कशं माक्षिकं तथा ॥ ३९ ॥
 नेपालं च समांशानि निविपेत्स्वन्वमध्यतः ।
 मर्दयित्वा शनैः सम्यक् त्रिफला-स्वरसेन च ॥ ४० ॥
 निम्बदाहिममौष्याधि - वासा-पत्रसैः पूयक् ।

१—पञ्चार्थमिदं विषयस्तथायं न व्यवहियते ।

काषकृपां विनिविष्य बालुकायन्त्रमध्यतः ॥ ४१ ॥
 पथेनृचिक-योगेन सप्तवारं विक्षेपयेत् ।
 पञ्चा सप्तदिनान्येतत् स्वाङ्ग-शीतलमुद्धरेत् ॥ ४२ ॥
 गुञ्जमात्रं प्रयुज्जीति नामकव्या दलान्वितम् ।
 सर्वे ज्वरा विनश्यन्ति शीतिका-विषमादयः ॥ ४३ ॥
 मरिचं भागधी शुण्ठी पित्तवृक्षकफोचरे ।
 कृष्णायतफलनीरेण तापज्वर-निवारयम् ॥ ४४ ॥
 अजाधीरेण संयुक्तं पित्तज्वर-निवारयम् ।
 तिलकायत-भस्म-नीरेण पञ्चगुल्मनिवारयम् ॥ ४५ ॥
 सैन्धवेन समायुक्त-मष्टशूल-निवारयम् ।
 मृदुस्तरस-संयुक्तं रत्नोष्णरोग-निवारयम् ॥ ४६ ॥
 तत्तत्साम्यानुपादनैश्च सर्वरोगहरं भवेत् ।
 नवग्रहरसो नाम्ना प्रसिद्धो भुवि राजते ॥ ४७ ॥

शुद्धवारय, शुद्धगन्धक, मोती, मैनशिल, कूठ, शंखभस्म, सुहागा, सुवर्णमाक्षिक, शङ्खभस्म इन सबको समानभाग लेकर सरल में रक्खें फिर इसकी वीरे २ त्रिफला के स्वरस में मर्दन करें। नीम, अनार, मूवा, अकूसा इनके बसों के रस से प्रत्येक एक-एक दिन मर्दन करें पश्चात् काषकृपी में रसकर बालुका यन्त्र में पकावें। शीशी के ऊपर छातकपरमिट्टी करके सात दिन तक बालुका-यन्त्र में पाक करें। स्वाङ्ग-शीतल होने पर निकालें। इस रस को एक रत्नी की मात्रा में नागरवेल प्राण के साथ सेवन करावें। इसके सेवन से शीतज्वर विष-मज्जर आवि सब प्रकार के ज्वर दूर होते हैं। पित्त, वात और कफ इनसे उत्पन्न ज्वर में काली मरिच, पीपल तथा सोंठ के चूर्ण के अलु-पान के साथ सेवन करावें। यह रस पेट के रस के अनुपात के

साथ सेवन करने से तापयुक्त ज्वर को दूर करता है। बकरी के दूध के साथ देने से पित्तज्वर को दूर करता है। तिलकाण्ड की भस्म के जल के साथ देने से पाँचों प्रकार के गुल्म को दूर करता है। सेंधा नमक के साथ सेवन कराने से आठों प्रकार के शूल को नष्ट करता है। भागरे के स्वरस के साथ सेवन कराने से कफ के रोगों को दूर करता है। जिस जिस रोग को जो अनुपात हितकारी है उसीके साथ सेवन कराने से रोग को दूर करता है। इस प्रकार यह रस सब प्रकार के रोगों का नाश करने वाला है। यह नवग्रह नाम का रस पृथ्वी पर प्रसिद्ध है ॥३६-४॥

वृत्ति नवग्रहस्तः ।

पच लोकोत्तरो रसः

क्षतगन्धकनेपालं दन्तिबीजानि टङ्गुलम् ।
 परएहतुण्दीबीजानि राजवृक्षोऽमया मिहम् ॥ ४८ ॥
 पलाशबीजान्येकैकशृङ्गाया भागोत्तरेण च ।
 स्नुहीबीरेण संयुक्तं मर्दयेत्त्रिदिनं तथा ॥ ४९ ॥
 नारिकेलफले स्थाप्य महागाढातपे विप्रेत् ।
 तत्रैतं जायते क्षिप्रं गृहीत्वा नामिमध्यतः ॥ ५० ॥
 अणुमात्रविलेपेन विरेकं कुरुते क्षणात् ।
 वटिका-पादमात्रेण दशवारं विरेचयेत् ॥ ५१ ॥
 सुशीतलेन तोयेन शीघ्रं प्रक्षालयेत्ततः ।
 शरीरे गन्धमालिप्य माक्षिपदधि-संयुतम् ॥ ५२ ॥
 राजान्नं योजयेदम्लं तैलं निद्रां विवर्जयेत् ।
 लोकोत्तरसो शेष सर्वरोगान्तकः स्मृतः ॥ ५३ ॥

गुद्ध पारदः, गुद्ध गन्धकः, राक्षभस्म, जयपाल गुद्धः, सुहृगा, अरबी के बीज, विन्ध्याफल के बीज, अमलावास, हरड़, मिर्चोय, दाकके बीज इन सब द्रव्यों को क्रमानुसार एक एक भाग बढ़ाकर लेवें—जैसे पारद एक भाग, गन्धक दो भाग, राक्ष भस्म तीन भाग आदि। फिर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर तत्पश्चात् शेष द्रव्यों को मिला कर मर्दन करें फिर उसे तीन दिन तक आकके दूध से मर्दन करें पश्चात् उसे नारियल में रखकर तीव्रघूप में रखदेवें ऐसा करने से छत्रमें से तेल निकल आवेगा। इस तेल को थोड़ा सा लेकर नाभि के मध्य में लेप करें। इसके बोझ से लेप करने से मुनुष्य को शीघ्र दस्त होते हैं थोड़ा ही बड़ी में दश दस्त हो जाते हैं। परन्तु शीघ्र ही गुवा को बो देवें फिर शरीर में सुगन्धित पदार्थों का लेप करें, मँस की दही के साथ चाबल का सेवन करें। अन्न पदार्थ, तेल तथा जिन्ना इनका परित्याग करें। यह लोकोत्तर रस सब रोगों को नष्ट करने वाला है ॥ ४८-५३

वृत्ति लोकोत्तरो रसः ।

पच ग्रहणीवेमारसः—

पारदाग्रकसिन्दूरं विषं जातीफलं तथा ।
 कुटजस्य च बीजानि धूर्तबीजानि टङ्गुलम् ॥ ५४ ॥
 व्योषं मुक्ताभया-चूतफलबीजं तथैव च ।
 त्रिन्धमातङ्गबीजानि दाडिमारलुबीजकम् ॥ ५५ ॥
 एतानि समभागानि निक्षिपेत्स्वन्मध्यतः ।
 कपित्थ-स्वरसेनैव मर्दयेच्छलकश्चूर्णकम् ॥ ५६ ॥
 गुञ्जामात्रप्रमाणेन वटिकाः कारयेद्विषक ।
 एवं कुटजमूलत्वप्सेन च प्रयोजयेत् ॥ ५७ ॥

आमग्रहणिकां हत्वा कुरुते दीपनं परम् ।
 मधुना दधिना वापि रक्तग्रहणिकां जयेत् ॥ ५८ ॥
 शुण्ठीकपायसंयुक्तमतिसारं विनाशयेत् ।
 सविशेषानुपानैश्च ग्रहणीनां प्रयोजयेत् ॥ ५९ ॥
 कुठजानां च मूलानि विण्व-दाडिममूलकम् ।
 कपित्थवृत्तमूलानि कुम्भदानां तथैव च ॥ ६० ॥
 कमलानां च कन्दानां चन्दनं लविरं तथा ।
 पाठोदुम्बरमूलानि सुगन्धिं हस्वमूलकम् ॥ ६१ ॥
 एतानि समभागानि षटे हिप्पवान्ध्रयेस्ततः ।
 महागजपुटेनैव तैलमूद्घृत्य मूत्रले ॥ ६२ ॥
 विजयासिंहकलिङ्गि-बीजतैलं तथैव च ।
 एतच्चैलत्रयं तुल्यं तैलार्धं क्षतमस्म च ॥ ६३ ॥
 दक्षार्धमैला-कपूरमेकीकृत्य मिषग्वरः ।
 नामौ हस्ततले चायं गुदे पादतलेऽप्यवा ॥ ६४ ॥
 गुञ्जार्धमाश्रलेपेन प्रवाह-ग्रहणीकुलम् ।
 निवारयति लेपेन समस्तो बृंहणं तथा ॥ ६५ ॥
 रक्तामग्रहणीनां च दधिना सम्प्रयोजयेत् ।
 रक्तग्रहणि-मेदार्श्च नाशयेदतिमाश्रतः ॥ ६६ ॥
 प्रमाणादधिकं योऽपि प्रयोगं कुरुते मिषक ।
 मलपिष्टं मवेदेक-मानं च न विरेषयेत् ॥ ६७ ॥
 तथा लोकोचसरस-प्रयोगं कुरुते मिषक ।
 मलं मेदयति चित्रं मासाटक्कमिदं हृत् ॥ ६८ ॥

मृद्वैराग्मसा युक्तमामशूलं विनाशयेत् ।
 कथितो ग्रहणीवेलारसोऽयं लोकविश्रुतः ॥ ६९ ॥

रसखिन्दूर, अभ्रकमस, शुद्ध विष, जायफल, इन्द्रजौ, घतुरे-
 के बीज शुद्ध, सुहागा, सोंठ, मिरच, पीपल, मोती, हरद, आमके फल
 की सिंगी, बेलगिरी, पीपल, अनारदाना, अनार के बीज इन सब द्रव्यों
 को समान भाग लेकर खरल में रक्खें, परचात कैथ के रस में लूब
 मर्दन करें फिर इस रस की एक एक रत्ती की बटी बना लेंवें। वैद्य
 को चाहिये कि इन्हें कुड़े की जड़के रस के अनुपान के साथ सेवन
 करावें। यह आमजन्य ग्रहणी को दूर कर अग्नि को दीपन करने के
 लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है। शहद के अनुपान से अथवा दही के अनुपान
 से रक्त की ग्रहणी को नष्ट करता है। सोंठ के काढ़े के साथ सेवन
 करने से अतिसार को दूर करता है। विशेष विशेष अनुपानों के
 साथ विभिन्न प्रकार की ग्रहणी में इसे प्रयोग करें। कुड़ा की जड़,
 बेल, अनार की जड़, कैथ, आम की जड़, कमल की जड़, कमलकन्द,
 चन्दन, खैर, पाठा, गुलर की जड़, सुगन्धवाला, इन सबको समान
 भाग लेकर चूड़े में भर देंवें नीचे इसमें छिन्नकर देंवें ऊपर से चूड़े का
 मुँह बन्द कर देंवें परचात उनको गजपुठ में पाक करें, भाण्ड के तेल
 में एक पात्र तेल के संचय के लिये रल देंवें फिर भाँग के बीजों का
 तेल सिलहक का तेल तथा शिबलिङ्गी का तेल इन तीनों तेलों को
 समान भाग ग्रहण करें। तैलों से आधी पारद की मसम ग्रहण करें।
 कपूर और इलायची भी आधे आधे भाग ग्रहण करें परचात सबको
 एकत्रित कर मर्दन करें। इसका नामि, हस्ततल अथवा पादतल में
 आधी रत्ती की मात्रा में लेप करने से दारुण ग्रहणी का प्रवाह नष्ट
 होता है। सब प्रकार की ग्रहणी का यह लेप नाश करने वाला है साथ
 ही बृंहण भी है इसको रक्त और आम की ग्रहणी में दही के साथ
 सेवन करें। रक्त की ग्रहणी अत्यन्त शीघ्र नष्ट करता है जो व्यक्ति
 प्रमाद से अधिक प्रयोग करता है उसका मल बद्ध हो जाता है उसे

रेचन नहीं होता है। फिर उसके ऊपर यदि कोकरोवर रस का प्रयोग किया जावे तो वह शीघ्र मलका सेवन करके दस्त जाता है, मल को काढ़ देता है। अदरक के रस के साथ सेवन करने से आमशूल को दूर करता है। यह ग्रहणीवेला नामक रस के नाम से लोक में विख्यात है ॥ ५४-५६ ॥

इति ग्रहणीवेमारसः ।

अथ विरक्तामर रसः—

मूशिशुवजस्तुल्यक-कुबेराक्षयग्निमूलकाः ।

मूषात्रा-विषभूगुञ्जा-करञ्जानां समूलकाः ॥ ७० ॥

एतेषां भूपुटे तैलं संरुप्रेत विचक्षणः ।

स्रुतशुन्वद्रयोर्मस्य हरितालं च गन्धकम् ॥ ७१ ॥

त्रिकटु त्रिफला हिङ्गु माचिकं च समांशकम् ।

नागवज्रद्रयोर्मस्य विषं हिङ्गुलमेव च ॥ ७२ ॥

एतानि पटुचूर्णानि तेन तैलेन मेलयेत् ।

नागवज्ररसेनाथ वज्रमात्रं प्रयोजयेत् ॥ ७३ ॥

तथाद्रकं रसोपेतं सैन्धवेन प्रयोजयेत् ।

अष्टशूलानि गुन्मानि नाशयेदेकमात्रया ॥ ७४ ॥

वातान् कृष्ठान् पित्तरोमानपस्माराननेकशः ।

पीनसादिरलेष्मरोमान् ग्रन्थिरोमाश्च दारुणान् ॥ ७५ ॥

अश्मरीमूत्रकुण्डूदि-प्रमेहान् विषमज्वरान् ।

विनाशयेद् गदान् सर्वानन्यानापि निहन्ति च ।

विश्वम्भररसो नाम्ना सर्वरोगहरः स्मृतः ॥ ७६ ॥

कड़वा सहजला, सेंहुण्ड, रतुही, भाक, कुबेरक्षी, शिबक, मूली भूमि आमला, विष, गुञ्जा, करछ इनको मूल सहित ग्रहण करें इन सब द्रव्यों को एक भाण्ड में भर दें, पश्चात् भाण्ड के तल में छोटे २ छिद्र कर दें। फिर भाण्ड को एक गर्दे में रख दें। छिद्र के नीचे छोटा पात्र जिसमें तेल एकत्रित होता रहे, भाण्ड के ऊपर पुर लगावें, नीचे के पात्र में जो तेल या द्रव इकट्ठा हो उसे रस लेवें पश्चात् रससिन्दूर, वासन्धस्य, हरिताल भस्म, गन्धक, सोंठ, मिरच पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, हींग, सुवर्णमाक्षिक इनको समानभाग ग्रहण करें। नागभस्म, वज्रभस्म, विष और हिङ्गुल इनको भी पूर्वोक्त द्रव्यों के समान ग्रहण करें। पश्चात् सबका चूर्ण कर पूर्वोक्त तेल के साथ मर्दन करें। इस रस को नागरबेल पानों के रस के साथ तीन रत्न की मात्रा में प्रयोग करें अथवा अदरक का रस और सेंधे नमक के साथ सेवन करें। यह रस एक मात्रा के सेवन से आठों प्रकार के शूल और गुल्म इनकी दूर करता है। वातरोग, कृष्ठ रोग, पित्त-विकार तथा अनेक प्रकार के अपस्मार, पीनस आदि कफ के विकार, दारुण ग्रन्थि रोग, अश्मरी, मूत्रकुण्ड, प्रमेह आदि विकार, विषमज्वर को नष्ट करता है। और भी सब रोगों को दूर करता है। यह विश्वम्भर नामक रस सब रोगों को हरने वाला है ॥ ७०-७६ ॥

इति विश्वम्भररसः ।

अथ पञ्चबाहुरसः—

गन्धकाश्रक-धुतूर-गरलानां चतुष्टयात् ॥ ७७ ॥

तेलमृदुधृत्य तेनैव दोलायन्त्रे विपाचयेद् ।

गुटिकां तुलमात्रस्य तैलं प्रस्थप्रमाशकम् ॥ ७८ ॥

१—पञ्चार्धमिदं विस्पष्टतया चं व. व्यसक्ति ।
४ र०कौ०

तैलं निरक्षेपमापच्य भ्रजगोखरवाजिनाम् ।
 मूत्रैश्च पूर्ववत्पच्यन्मातुलुङ्गफले चिपेत् ॥७६॥
 तद्द्वारमम्रितं कृत्वा 'पुटयेत्स्त्वमात्रकम् ।
 पश्चादुद्घृत्य तस्मै सर्पं विनियोजयेत् ॥८०॥
 सर्पपदय-मात्रं तु ब्रह्मरन्ध्रे विलेपयेत् ।
 त्रिदोषाणि च सर्वाणि सर्वसर्पविषाणि च ॥८१॥
 भूतभ्रेतपिशाचादि ग्रहण्यादि शिरोगदाः ।
 कर्णाधिरोगानन्याश्च नाशयेत्स्वमात्रतः ॥८२॥
 पादाङ्गुष्ठेन लेपेन सर्ववातान्विनाशयेत् ।
 घृचीमुखप्रमाखन्तु नागवल्लीदसान्वितम् ॥८३॥
 मत्तयेच्छूलजालानि गुल्मानि विविधानि च ।
 कुक्षिरोगानशेषाश्च नाशयेन्नात्र संशयः ॥८४॥
 महिषीदधिसंयुक्तं पाण्डुजालं विनाशयेत् ।
 कदलीफलसंयुक्तं मत्तयेच्च पिबेत्पयः ॥८५॥
 सर्वाङ्गे लेपयेद् गन्धं कर्पूरेण च संयुतम् ।
 मदनोद्रेक-संयुक्तो महामत्तगजेन्द्रवत् ॥८६॥
 खरस्य दण्डवद् भूत्वा स्वदण्डमनिवारितम् ।
 निरन्तरं महागाढ-रतिं कुर्वन्मदोद्यतः ॥८७॥

१—'स्वस्वमात्रकम्' इत्यत्र 'स्वस्वमात्रकम्' इति पाठः सुष्ठु प्रतिभाति ।

२—'पाण्डुजालेन लेपितं' इत्यत्र 'पाण्डुजालेन' इति पाठः सुष्ठु प्रतिभाति ।

३—यस्य पादस्थार्थो न विज्ञायते ।

यामत्रये शतं स्त्रीणां तथा तृप्तिं विना जयेत् ।
 सुहृद्भुङ्क्तेः पिबेद् गन्धं शर्करासंयुतं पयः ॥८८॥
 नारिकेलोदकं चैव पिबेच्चैत्योपचारकम् ।
 कर्पूरांस्त्रितताम्बूलं कुरुते सस्ववान्नरः ॥८९॥
 वृद्धिं च स्तम्भनं चैव कुरुते च निरन्तरम् ।
 जम्बीरफलबीजानां चूर्णमुष्णेन कारिष्या ॥९०॥
 पिबेत्तत्स्वमात्रेण तदुद्रेकं विनाशयेत् ।
 सर्वेषामपि रोगाणामनुपान-विशेषतः ॥९१॥
 तदोषध-प्रयोगेऽस्मिन्नप्रमत्तः प्रयोजयेत् ।
 पञ्चबाण-रसस्यातः सर्वलोकोपकारकः ॥९२॥

गन्धक शुद्ध, अश्रक, भस्म, चतूर, बिष इत्यादि चारों को समान भाग लेकर एक तोले की गुटिका बना लेवें परचात् उसे एक प्रस्थ तेल में बोलायन्त्र द्वारा तब तक पकावें जब तक कि सब तेल न जल, जावे, फिर, उसे बकरी, गाय, गधा, घोड़ा इनके मूत्र में पकावें परचात् उसे बिजौरा, बीजू के फल में रख देंवें, उसके मुख को बन्द कर उसे बीबी देर पकावें । पचात् उसकी भस्म को निकाल कर एक सरसों की बराबर प्रयोग करें, इसकी दो सरसों की बराबर मात्रा में ब्रह्मरन्ध्रे में लगावेवें । इसके प्रयोग से सर्प प्रकार के संनिपात तथा सब प्रकार के सर्पों के बिष दूर होते हैं । भूत, भ्रेत, पिशाच आदि ग्रह तथा महिषी, शिरोरोग, कर्ण रोग, नेत्र रोग तथा अन्य रोग शीघ्र ही इस के प्रयोग से नष्ट होते हैं । पैर के अंगुठे में यदि इस तैल का लेप कर दिया जावे तो सब प्रकार के वातरोगों को दूर करता है । एक सुई पर जितना क्षण जावे उतने की पात्र पर लकीर लीचकर पान को खाने से अनेकों प्रकार के शूल तथा गुल्म

नष्ट होते हैं। सब प्रकार के पेट के रोग नष्ट होते हैं इसमें संशय नहीं है। भैंस की दही के साथ सेवन करने से पाण्डू रोग को नष्ट करता है इसमें केले के फल के साथ दूध का सेवन करें। सब शरीर में गन्धक तथा कपूर का लेप करें ऐसा करने से मनुष्य सतवाले हाथी की तरह काम से व्याकुल हो जाता है। इसको सेवन करने वाला निरन्तर मेथन करता रहता है तीन प्रहर में सौ स्त्रियों से भोग करता है इतने पर स्वयं लप्स नहीं होता। इसके पश्चात् गायका दूध शकर मिलाकर बार बार पान करें। नारियल का पानी शीतल उपचार के लिये सेवन करें। पानमें कपूर रखकर सेवन करने से मनुष्य सत्त्ववान् होता है। इस से मनुष्य की स्तम्भन-शक्ति बहुत बढ़ जाती है यदि उसको कम करना हो तो जम्बीरी नीबू के फल की मज्जा गरम जल के साथ पान करें। इसके सेवन से शीघ्र ही काम का वेग शान्त होता है। सब प्रकार के रोगों में अनुपान भेद से बिना किसी शंका के प्रयोग करें। यह पञ्चबाण रस सम्पूर्ण जगत् का उपकार करने वाला है ॥ ७३-८२ ॥

अथ ब्रह्मास्त्ररसः—

कृष्णचित्रकमूलानि कृष्णामलकमेव च ।
कृष्णनिर्गुण्डिकामूलं कृष्णश्रीतुलसीदलम् ॥६३॥
एतत्सर्वं समं कृत्वा पटुचूर्णं च कारयेत् ।
कृष्णवर्णं सूतभस्म लोहवज्रादि^१ - भस्मकम् ॥६४॥
चतुर्भस्मसमं कृत्वा तद्वर्णं^२ कृष्णपारदम् ।
तदेकांशं गन्धकं च तालकं च मनःशिला ॥६५॥

१—'वज्रादि' ह्यत्र 'वज्रादि' इति पाठः शुद्धोक्तिः ।

२—'शुद्धपारदम्' पाठोऽर्थः प्रतिभाति ।

नेपालं त्रिफला ज्योषं रामठं माक्षिकं तथा ।
एतत्सर्वं समं पूर्व-मूलिकाचूर्णमेव च ॥६६॥
तत्सर्वं निचिपेत्खन्वे कृष्णोन्मत्तरसेन च ।
शृङ्गनिम्बार्द्रकरसैर्जम्बीरस्वरसेन च ॥६७॥
मर्दयेद्दशवाराणि सम्यगञ्जनतुल्यकम् ।
वटकान्कारयेद्भिषक् ॥६८॥
एकमुष्णाम्बुना पुक्तं वातानां च प्रयोजयेत् ।
नागवल्क्यशृतेन्द्राणां रसैर्युक्तं प्रयोजयेत् ॥६९॥
अर्धमण्डलमात्रेण वातजालं विनश्यति ।
सप्तवारं त्रिवारं वा वातानन्यान्विनाशयेत् ॥१००॥
शृङ्गीरसेन मधुना गोमूत्रेणाथवोभवात् ।
ईदृग्विधानुपानैश्च कुष्ठानाञ्च प्रयोजयेत् ॥१०१॥
सर्वे कुष्ठा विनश्यन्ति रवेतकुष्ठं विशेषतः ।
पणमासं सेवयन्ति त्वं कुष्ठां सर्वं पुनर्भवेत् ॥१०२॥
पुनः पणमाससेवायां रक्तवर्णं भवेद्गुः ।
त्रिमासं सेवयेत्पदचातकुष्ठां भवति तद्गुः ॥१०३॥
देहसिद्धिर्भवैतस्य जीवेच्चन्द्रार्कतारकम् ।
ज्वरादिसर्वरोगाणामनुपान - विशेषतः ॥१०४॥
प्रयोजयेत्पलान्यन्ते सर्वरोगपतत्रिणः ।
ब्रह्मास्त्ररस इत्युक्तो विश्वामित्रेण निर्मितः ॥१०५॥

काली चित्रक की जड़, काले आमले, काली निर्गुण्डो की जड़, काली तुलसी के पत्ते, इन सबको समान भाग लेकर अत्यन्त महीन

चूर्ण कर लेवें पश्चात् पारद की कृष्णभस्म, लोह, वज्र तथा नाग इन तीनों की भस्म इन चारों भस्मों को समानभाग लेवें इनका आधा भाग शुद्ध पारद तथा चौथाई गन्धक, हरिताल तथा मैमशिल ग्रहण करें फिर क्षात्रभस्म, त्रिफला, त्रिकुटा, हींग, सुवर्णमाक्षिक इन सबको समानों के समान भाग लेकर चूर्ण में मिला देवें पश्चात् सबको खरल में रखकर काले धतूरे के रस में मर्दन करें। फिर भांगरा, नीम, अदरक, जन्धीरी नीबु इनके रस से अंजन के समान अत्यन्त सूक्ष्म मर्दन करें। पश्चात् (दो-दो रत्ती) की बटो बना लेवें। इनमें से एक गोली गर्भ जल के साथ वातरोगों में प्रयोग करें अथवा नागरवेल, गिलोय तथा लहसुन के रस के साथ प्रयोग करें। यह चौबीस दिनों में महाबात रोगों को दूर करता है। सात दिन अथवा तीन दिन में साधारण जो वातरोग हैं उन्हें नष्ट करता है। भांगरे का रस और शाहद के साथ अथवा गोमूत्र के साथ अथवा दोनों के साथ कुष्ठ रोग में सेवन करावें। इसके सेवन से सब प्रकार के कुष्ठ दूर होते हैं विशेष करके श्वेत कुष्ठ दूर होता है। इसको छः मासतक निरन्तर सेवन करने से शरीर काले रंग का हो जाता है। फिर छः मास तक सेवन करने से शरीर रक्त वर्ण का हो जाता है फिर तीन मास सेवन करने से उसका शरीर काला हो जाता है उसके देह की सिद्धि हो जाती है तथा चन्द्रमा और सूर्य का जब तक अस्तित्व है तब तक जीवित रहता है। ज्वरादि सब रोगों में अनुपान भेद के साथ सेवन कराने से सब रोग दूर होते हैं। यह ब्रह्मास्त्र रस स्वयं विरचामित्र ने कहा है ॥ २३-१०५ ॥

इति ब्रह्मास्त्र रसः ।

अथ महाकालानलरसः—

वराटं शङ्खमण्डूरशुक्तिभौक्तिकशुकयः ।

गोखुराश्वजदन्ताश्च शशदन्ताश्च तत्सुरम् ॥१०६॥

मृगदन्ताश्च दन्ताश्च पुटयेदन्त्रयेत्ततः ।

तद्भस्मतुल्यममृतं व्योषं च रसभस्म च ॥१०७॥

वैकान्तकान्तशुल्बानां भस्मान्येतानि मेलयेत् ।

खल्वे निक्षिप्य शार्दूलमृगादीनां च पैत्तिकैः ॥१०८॥

मत्स्येन्द्रसर्पाणां पितृश्च बहु मर्दयेत् ।

करण्डके विनिक्षिप्य प्रमाणं स्रपट्टयम् ॥१०९॥

नालिकेराम्भसा युक्तं त्रिदोषाणां प्रयोजयेत् ।

सद्योऽज्ञानतमो हन्ति तदारच्यकरं भवेत् ॥११०॥

त्रिदोषरक्षसकुलं क्षिप्रमेव जयं नयेत् ।

तदा महाविदाहं च क्षुत्पिपासाश्च कारयेत् ॥१११॥

दध्यन्नेक्षुरसाब्देन शर्करा-जल-शीतले ।

नालिकेरजले कपित्थफल-नीरकैः ॥११२॥

कदलीफलनीरेण

तस्य शान्तिं प्रकुर्वीत देहे गन्धं विलेपयेत् ॥११३॥

रवासकासादिहृद्रोग-पीनसान्वातजान्हरेत् ।

महाकालानलरसः ख्यातो लोकोपकारकः ॥११४॥

कोड़ी, शङ्ख, मण्डूर, सीप, मोती की सीप, गाय के खुर, बाँड़े तथा बकरी के दाँत, खरगोश के दाँत तथा खुर, हिरन के दाँत तथा बाँड़े के दाँत इन सब को समान भाग लेकर सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूँके। इस भस्म के समान भाग शुद्ध विष, त्रिकुटा का चूर्ण तथा रससिन्दूर मिलावें। वैकान्त, कान्त लोह, दाश्र इन तीनों की

१—'पित्तकैः' पाठोऽयं प्रतिभाति ।

२—'यदा' पाठोऽयं प्रतिभाति ।

भस्म भी पूर्वोक्त भस्मों के समान मिलावे पश्चात् सब को खरल में ढाल कर शार्दूल (सिंह), शृग आदि के पित्तों से मर्दन करें। मछली, हाथी, सर्प इनके पित्त से खूब मर्दन करें। पश्चात् इस रस को कृषी में भर कर रखलेवें। इसको दो सरसों की बराबर प्रयोग करें। नरियल के जल के साथ त्रिदोष (सन्निपात) में प्रयोग करें। शीघ्र ही सन्निपात की अज्ञानता को दूर करता है। सन्निपात रूपी राक्षस के बंरा को यह शीघ्र ही नष्ट करता है। इसके सेवन से बहुत दाह होता है भूख तथा प्यास बहुत लगती है इसलिये इसके सेवन के पश्चात् दही-भात, ईख का रस, शंकरा, युक्त शीतल जल, नारियल का पानी, कैथ का रस, केले के फल का रस, सेवन करावें। उसकी शान्ति के लिए शरीर में गन्ध द्रव्यों का लेप करें। यह रस श्वास, कास, हृद्रोग, पीनस आदि रोग वात व्याधियाँ इनको दूर करता है। यह महाकालानलरस सन्पूर्ण जगत् का उपकार करने वाला है ॥ १०६-११४ ॥

इति महाकालानलरसः ।

अथ आग्नेयरसः—

नागरं मागधीवेल्ल-वह्निपथ्या-सिताः समाः ।
तदेकांशं सूतमस्म तेषां चूर्णेन योजयेत् ॥११५॥
प्रयोजयेन्निकमात्रं तरुणोष्णेन वारिणा ।
अधिकं दीपनं कुर्वन्मोजनं कुरुते नरः ॥११६॥
गुल्मभेदा विनश्यन्ति सर्वांश्च सर्पान्निनाशयेत् ।
वातशूलानि शूलानि श्वासकासान् हरेदपि ॥११७॥
आग्नेयरस इत्याख्यो गदान्दहति बह्विधत् ।

सोंठ, पीपल, कालीमिरिष, चित्रक, हरड़, मिसरी इन सबको समान भाग प्रहण करें। इनमें से एक की बराबर ही रससिन्दूर मिला कर सबको एकसाथ मर्दन करें पश्चात् इसे तीन मास की मात्रा में गुन गुने पानी के साथ प्रयोग करें। इस रस के ऊपर मनुष्य को अधिक दीपन भोजन करना चाहिये। इसके सेवन से सब प्रकार के गुल्म नष्ट होते हैं तथा सब प्रकार के सर्पों का विष दूर होता है। वातशूल, शूल, श्वास, कास ये सब दूर होते हैं। यह आग्नेय रस सब रोगों को अग्नि के समान दूर करता है ॥ ११५-११७ ॥

अथ संशोषकरसः—

बृहती पाटलामूलं बज्रदण्डीयचित्रकम् ॥११८॥
भृदन्ती श्वेतगान्धारी खज्जिगज्जिष्टकाभवा ।
काकमाची द्विजिह्वा च गन्धर्वाह्वा द्विकण्टिका ॥११९॥
धात्रीद्वयं चित्रकं च श्वेतहिङ्गुसुरदुमी ।
पौष्करं तम्बुरुं चैव व्योषं क्षारद्वयं तथा ॥१२०॥
तदेकोत्तरष्टुद्वया च द्रव्याण्येतानि योजयेत् ।
कृत्वा चूर्णं तदेकांशं मात्रिकं लोहभस्म च ॥१२१॥
सूतमस्माभृतं चूर्णमेकीकृत्वाखिलं तथा ।
गुज्जामात्रप्रमाणं च प्रयोगं कुरुते भिषक् ॥१२२॥
जम्बीराम्लानुपानेन सेवयेन्मण्डलद्वयम् ।
एवं प्रतिदिनं सूक्ष्मं शोषणं कुरुते भिषक् ॥१२३॥
संशोषणरसो नाम्ना प्रसिद्धः सर्वरोगहा ।
मेरुमप्यगुमात्रं च कुरुते शङ्करोदितः ॥१२४॥

१—श्वेतगान्धारी = श्वेत पुनर्वा ।

२—पादस्थार्थो नावबुध्यते ।

बड़ी कटेरी, पाटल की जड़, बज्रदण्डी, चित्रक, भृङ्गवी, सफेद जवासा, मकोय, सर्पिणी, एरण्ड, आमला, भुमि आंवला, चित्रक, सफेद होंग, देवदारु, पोहकरमूल, नेपाली धनियाँ, खोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार, सज्जीखार, इन सब द्रव्यों को क्रमशः एक एक भाग बढ़ाकर लेवें फिर उसका चूर्ण कर लेवें पश्चात् चूर्ण का चतुर्थांश माक्षिकभस्म, लोह भस्म, शुद्ध विष तथा रससिन्दूर ग्रहण करें। पश्चात् सबको एकत्र मिलाकर रस लेवें। वैद्य को चाहिये कि इसको एक रस्ती की मात्रा में प्रयोग करें और जम्बोरी नीबू के रस के अनुपान से तीन मास और छः दिन तक निरन्तर सेवन करावे। इसके सेवन से नित्य प्रति थोड़े शोषण होता है। यह संशोषण रस सबरोगों को हरने वाला है। पहाड़ जैसी चीज को भी बहुत छोटी बना देता है ॥११८-१२१॥

अथ रसगाथा पुटिका—

हेमाश्रकरसादीनां^१ सिन्दूरं च चतुष्टयम्।
कृष्णामण्डफलनीरेण भावयेदेकविंशतिः ॥१२५॥
अश्वत्थस्य मुखधानैरच^२ अश्वगन्धारसेन च।
कृष्णगोक्षीर-रसकैहरिणी-क्षीरपूरकैः ॥१२६॥
बहुशी भावयेत्तस्य तवक्षीरी-चतुर्गुणम्।
द्राक्षा-खजूरमधुकमट एलाह-चूर्णकम् ॥१२७॥
श्रीचन्दनाब्ज-ककोलजातिचूर्णं तथैव च।
क्षिप्त्वा पश्चान्नारिकेल-फलनीरेण भावयेत् ॥१२८॥

१—'रसादीनाम्' इत्यत्र 'रसादीनाम्' इति शब्दः पाठः।

२—पादस्थार्थो भाष्यमुच्यते।

कृष्ण-गोक्षीरसंयुक्तं निष्कमात्रं तु सेवयेत्।
शर्करानवनीतेन सेवयेदेकमण्डलम् ॥१२६॥
चाराम्लबर्णं तैलं वर्जयेत्स्त्रीषु सङ्गमम्।
मधुरेष्टान्न-पानानि भोजयेद्विवसानयम् ॥१२७॥
अतिशुष्कस्य कायस्य पुष्टिं वितनुतेऽपि च।
स्त्रीणां च पुरुषाणां च कुरुते कायवर्द्धनम् ॥१२८॥
आयुष्करी व्रथकरी सत्त्व-सन्तानकारिणी।
रसमात्रेति विख्याता नाम्ना लोके महीयते ॥१२९॥

सुवर्ण, अश्रक, पारद, नाग इनचारों को भस्म समान भाग लेकर पेटे के फल के रस में इसीस दिन तक भावित करें। फिर उसे अश्व-गन्ध के रस से कालीगाय के दूध से, हिरनी के दूध से अनेक बार (इसीसवार) भावित करें पश्चात् इस रससे योगुता तवाखीर का चूर्ण मिलावें तथा दाख, खजूर मुलहठी, छोटी इलायची, बहेडा, सफेद चन्दन, कमल, कंकोल, जावित्री इनका चूर्ण भी पूर्वोक्त चूर्ण की बराबर मिलावें पश्चात् उसे खरल में रस कर नारियल के फल के रस से भावित करें इस रस को काली गाय के दूध के साथ तीन मासे की मात्रा में सेवन करावें। अनुपान के लिए शर्कर और मक्खन ग्रहण करें तथा अड़तालीस दिन तक सेवन करावें। इस रस के सेवन करने पर चार, अम्लरस, नमक, तेल, स्त्रीप्रसङ्ग इन कामों का परित्याग करें। मधुर तथा इच्छल पदार्थों का सेवन दिन में खूब करें। इस रस के सेवन से शरीर जिस का अत्यन्त सूख गया हो ऐसे मनुष्य का शरीर पुष्टि को प्राप्त होता है। स्त्री तथा पुरुषों का शरीर वृद्धि को प्राप्त होता है। इस से आयु बढ़ती है, बशीकरण होता है, बल तथा सन्तान प्राप्त होते हैं। यह रस-मात्रा नामक योग पुष्ठी पर अत्यन्त विख्यात है ॥१२५-१२९॥

यस्य त्रैलोक्यचिन्तामहिरसः—

रसं वज्रं हेम तारं^१ ताम्रतीक्ष्णाभ्रकामृतम् ।
 गन्धकं मौक्तिकं शङ्खं प्रवालं तालकं शिला ॥१३३॥
 शोधितं तु समं सर्वं सप्ताहं भावयेद् दृढम् ।
 निर्गुण्डी-धूरणद्रावैर्वज्रदुग्धे दिनत्रयम् ॥१३४॥
 अनेन पूर्येतसम्यक्^२ पीतवर्णवराटिकाः ।
 टङ्कणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तासां मुखं लिपेत् ॥१३५॥
 रुद्ध्वा भायदपुटे पाच्याः साङ्गशैत्यं विचूर्णितम् ।
 सर्वतुल्यं^३ च वैक्रान्तं पादांशं रसभस्मकम् ॥१३६॥
 शिष्टमूलद्रवैः सर्वं सप्तवारं विभावयेत् ।
 चित्रमूलकपायेण भावनास्चैकविंशतिः ॥१३७॥
 आर्द्रकस्य^४ द्रवैः सप्त त्रितयं विजयाद्रवैः ।
 जम्बीरैर्मातुलुङ्गैर्वा सप्तवारं विभावयेत् ॥१३८॥
 सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा चूर्णपादांशटङ्कयम् ।
 टंकणांशं वत्सनाभं तत्समं मरिचं चिपेत् ॥१३९॥
 लवङ्गं नागरं पथ्या कणा जातोफलं पृथक् ।
 प्रत्येकं वत्सनाभस्य पादांशं चूर्णितं चिपेत् ॥१४०॥

१—“ताम्रं तीक्ष्णाभ्रकामृतम्” पाठोऽयं सुष्ठु प्रतिभाति ।

२—अन्यत्रे तु—“पीतवर्णान् वराटकां” इति पाठः ।

३—“चूर्णतुल्यं सूतं सूतं वैक्रान्तं सूतपादिकम्” इति योगरत्नाकरीयः पाठः ।

४—“आर्द्रकस्य रसेनैव भावना सप्त एव च” इति योगरत्नाकरीयः पाठः ।

मातुलुङ्गाद्रिकद्रावैः सर्वमेतद्विलोडयेत् ।
 चतुर्गुञ्जमिदं खादेत्कणाचौद्रं^१ लिहेदथ ॥१४१॥
 सौद्रैर्वा चार्द्रकद्रावैः^२ शुण्ठीकायगुडान्वितम् ।
 अनुपानमिदं खादेत्सर्वेणप्रशान्तये ॥१४२॥
 वह्निं दीपयते बलं च कुरुते तेजो महद्वर्धते
 वीर्यं वर्धयते विषं च हरते दाढर्यं विषचेतनोः ।
 अभ्यासेन निहन्ति मृत्युपलितं पुष्टिं प्रदत्ते नृणां ।
 कासं कृन्तयते क्षुतं चपयते श्वासं च^३ निष्क्रामते ॥१४३॥
 वातं विद्रधिशूलपाण्डुग्रहखीरक्तातिसाराञ्जयेद्
 गुल्मप्लीहजलोदरारमरितृपाशोथान् हलीमोदरम् ।
 लूताकुच्छ्रमगन्दरज्वरगणानशांसि^४ कुष्ठान्यहो
 साध्यासाध्यरुजो निहन्ति च रसत्रैलोक्यचिन्तामणिः ॥१४४॥

शुद्ध पारद, वज्रभस्म, सुवर्णभस्म, रजतभस्म, ताम्रभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध विष, गन्धक, मोती, शङ्ख, प्रवाल भस्म, हरिताल शुद्ध, मैनशिल शुद्ध, इन सब को समान भाग लेकर सात दिन तक सँभाल तथा जमीकन्द के रस में खूब भावित करें, पश्चात् शूदर के दूध में तीन दिन भावित करें, पश्चात् पीले रंग की कौड़ियां लेकर उनमें इस कल्क को भली प्रकार भर दें फिर सुहागे को आक के

१—“लिहेदथ” इत्यत्र “लिहेदथ” पाठोऽयं प्रतिभाति ।

२—“शुण्ठ्या कायं गुडान्वितम्” इत्यपि पाठः ।

३—“विष्क्रामयेत्” पाठोऽयं प्रतिभाति ।

४—योगरत्नाकरे तु “कुष्ठं जयेत्” इति पाठः ।

दूध में पीस कर उससे कौड़ियों का मुख बन्द कर दें। पश्चात् सब को एक हाण्डी में भर कर बन्द कर दें फिर गजपुट में पकावें, स्वाङ्ग-रीतल होने पर निकाल कर चूर्ण कर लें, पश्चात् इस सब चूर्ण की बराबर वैक्रान्तभस्म मिलावें तथा इससे चौथाई रससिन्दूर मिलावें, पश्चात् सबको एक साथ खरल में रखकर सहेजने के रस से सातवार भावित करें फिर चित्रक की जड़ के काथ से इक्कीस बार भावित करें फिर अदरक के रस से सातवार भावित करें तथा तीन बार भांग के रस से भावित करें फिर जम्बीरी नीबू तथा विजौरा नीबू के रस से सातवार भावित करें। पश्चात् सुखाकर अत्यन्त महीन चूर्ण कर लें। इस चूर्ण का चौथाई सुहागा मिलावें तथा सुहागे की बराबर ही शुद्ध बत्सनाभ तथा काली मिरच मिलावे। पश्चात् लौंग, सोंठ, हरड़, पीपल, जायफल इनको पृथक् पृथक् बत्सनाभ से चौथाई प्रहरण करें पश्चात् इनका भी चूर्ण कर पूर्वोक्त चूर्ण में मिला देवे फिर सबको विजौरा नीबू तथा अदरक के रस से भावित करे। इस रस को चार रत्ती की मात्रा में पीपल के चूर्ण तथा शहद के साथ सेवन करे, अथवा शहद के साथ अथवा अदरक के रस के साथ सेवन करावे अथवा सोंठ का काथ और शुद्ध के साथ सेवन करावे इन अनुपानों के साथ सबरोगों की शान्ति के लिये सेवन करे। यह रस अग्नि को दीपन करने वाला है, बल को बढ़ाने वाला है, तेज को भी बढ़ाने वाला है, वीर्य को बढ़ाता है। विष को हरण करने वाला है शरीर को अत्यन्त दृढ़ बनाने वाला है, इसके सेवन से मृत्यु तथा पक्षित रोग दूर होता है। शरीर अत्यन्त पुष्ट होता है। खांसी नष्ट होती है, जुबा बढ़ती है, खास नष्ट होता है। वात रोग, विद्रधि, शूल, पाण्डु रोग, ग्रहणी और रक्तसिसार ये दूर होते हैं। शुल्म, प्लीहा जलोदर, अश्मरी, रुषा, शोथ, हलीमक, उदर रोग, ये दूर होते हैं। लता का विष, मूत्रकृच्छ्र, भगन्दर, अनेकों प्रकार का ज्वर, बवाभीर,

साध्य तथा असाध्य कुष्ठ इन सबको यह त्रैलोक्यचिन्तामणि रस दूर करता है ॥ १३३-१४४ ॥

इति त्रैलोक्यचिन्तामणिरतः ।

इति हिन्दी-टीकोषेता रसकौमुदी समाप्ता
समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।



काय	—का गयासहा पाण्डेव	१५
१	कविराज श्री	श्री का
	विद्योतिनी संस्कृत हिन्दी	सहित
आयुर्वेद	आयुर्वेदिक चिकित्सा का	
१	वैद्यकशास्त्रोपनिषद् हिन्दी	विमर्श
२	हिन्दी	विमर्श
का	आचार्य पाठक	
	—सहित प्रकृत	रस
साधवनिदान	सधुकोष संस्कृत	विद्यो हिन्दी टीका
गभरश्च	परिपालन का मुकुन्दरस	
नव्यचिकित्सा	—का मुकुन्दरसपत्रम्	
१	शताब्दी की पद्य	का मुकुन्दरस
२	द्रव्यगुणविज्ञान	१ भाग
३	पेटेष्ट	ईश का रमानाथ द्विवेदी संस्करण
४	का रमानाथ द्विवेदी	
	चय शिवनाथ	
	सचित्र आचार्य प्रियव्रत	
	चन्द्रादय	चन्द्रराज भण्डारी
सचित्र पुनर्ले	का	तीस संस्करण
की	रमानाथ द्विवेदी	
भयव्य	ना	यशवन्त मि
	विज्ञान सचित्र—का	काकोर परिचरित
किल	श्री	—पूजादि का कला
	की	विद्युत्कार की